प्रमाणमित्याचक्षते । तस्माद्भावो देवादीनामधिकारस्य ॥
(इति पूर्वपक्षः)

भाषार्थ-अब यहां से ३१ । ३२ दो सूत्रों में पूर्व पक्ष कहते हैं। इस प्रकरण में यह प्रतिज्ञा की जा चुकी है कि देवतादि को भी ब्रह्म विद्या के पढ़ने जानने में अधिकार है सो यह लौटा जाता है कि जैमिनि आचार्य ब्रह्म विद्या में देवतादि को अधिकार नहीं मानते हैं क्योंकि देवों को ब्रह्म विद्या का अधिकार स्वीकार करने पर विद्यापन की सामान्यता होने से मध्वादि विद्याओं में भी अधिकार स्वीकार करने पड़ेगा। और ऐसा होना सम्भव नहीं। (असौवाआदित्यो० छान्दोग्योपनि० प्र०३ । खं०१) वह आदित्य-देवताओं में मधु है। अर्थात् मधु [शब्द] बुद्धि के आरोप से मनुष्य आदित्य देव की उपासना करें। यदि देवताओं को भी मधु बुद्धि से उपासना करना स्वीकार करें तो आदित्य देवता कैसे अन्य आदित्य देवता की उपासना करेंगे?। और फिर उसी पते पर आगे श्रुति में आदित्य से सम्बन्ध रखनेवाले रोहितादि पांच अमृतों का उपक्रम किया है कि वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत्, और साध्य ये पांच देवगण क्रम से उधर आदित्य के लोहितादि अमृत रूप का सेवन करते हैं ऐसा कहकर (प्रपा० ३ खं० ६) में कहा है कि,, सो जो इस अमृत को जानता है वह वसु देवताओं में कोई एक होकर इसी अमृत को देखकर अग्निरूप मुख से तृप्त होता है,, इत्यादि कथन से वस्वादि देवताओं के सेव्य अमृतों को जानते हुओं को वस्वादि देवों की महिमा प्राप्त होना श्रुति दिखाती है। तब शंका यह है कि वस्वादि देवता-अमृतत्व के सेवी अन्य किन वस्वादि को जानें ?। और वस्वादि की अन्य किस महिमा की काङ्क्षा करें ?। तथा (अग्निः पादः० खं० १८ कं०२ । वायुर्वाव संवर्गः । प्र० ४ खं०३ । आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः प्र० ३ । खं० १९) इत्यादि देवरूपों की उपासनाओं में उन्हींर देवतारूपों को अधिकार नहीं हो सकता है। तथा (इमावेव गोतमभरद्वाजौ०) इत्यादि ऋषियों सम्बन्धी उपासनाओं में भी उन्हीं ऋषियों को अधिकार होना सम्भव नहीं है। और भी किस कारण इन्द्रादि देवताओं को अधिकार नहीं सो भी अगले ३२ सूत्र से दिखाते हैं—

जो यह सूर्य मण्डलरूप द्युलोक में दिन रातों द्वारा निरन्तर भ्रमण करता हुआ त्रिलोकी जगत् को प्रकाशित करता है। उसमें ही आदित्यादि देवता वाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है अर्थात् मूल देवता नहीं है। लोक

प्रसिद्धि से और श्रुति वाक्यों में आदित्य का विशेष उपसंहार दीखनेसे आदित्य ज्योति में देवता पद का मुख्य प्रयोग होता है । क्योंकि अन्य चन्द्रादि ज्योति सूर्य ज्योति से प्रकाशमान होने से गौण वा सूर्याधीन हैं । इन्द्रादि देव भी सूर्य के ही विद्युदादि रूप भेद हैं । इस सूर्य मण्डल में हृदयादि चेतनांश न होने और जड़ होने के कारण विद्या ग्रहण की शक्ति वा इच्छा न होने से विद्या के अधिकार का योग नहीं हो सकता है । क्योंकि ये प्रकाश मण्डल मट्टी आदि के तुल्य अचेतन (जड़) हैं । इसी के अनुसार अग्निवायु आदि भी जड़ पदार्थ हैं । यदि कहो कि-मन्त्र, ब्राह्मण, इतिहास, पुराण, और लोक से देवतादि का साकार चेतन होना सिद्ध है इससे उक्त दोष नहीं आता । तो हम कहते हैं कि यह ठीक नहीं है । देखो-उन में लोक व्यवहार तो कोई स्वतन्त्र प्रमाण ही नहीं क्योंकि (गतानुगतिको लोकः) लोक में भेड़िया घसान ही प्रायः चलती है । जिनकी विशेषता का विचार न कियागया हो ऐसे प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ही प्रसिद्ध विषय लोक सिद्ध माने जाते हैं । सो इस चेतन देवता वाद की सिद्धि में प्रत्यक्षादि में से कोई भी प्रमाण नहीं है । इतिहास पुराण भी पौरुषेय होने से अन्य स्वतन्त्र मूल प्रमाण की सहायता की अपेक्षा रखते हैं इस से वे प्रामाणिक नहीं हो सकते । ब्राह्मणगत अर्थ वाद वाक्य भी विधि वाक्यों की स्तुति के लिये होने से पृथक् स्वतन्त्रता से देवतादि को साकार सिद्ध करने में कारण नहीं बन सकते । और मन्त्र भी स्तुति आदि कर्म में विनियुक्त हैं प्रयोग करने में ही सम्बन्ध रखने से कहने बोलने के लिये होने पर किसी विषय के प्रमाण रूप नहीं हो सकते ऐसा पूर्व पक्षी लोग कहते हैं । तिससे देवतादि को विद्या का अधिकार नहीं है।

यह पूर्व पक्ष हमारे सामग्मी तथा आर्यसमाजियों के अधिकांश अनुकूल होगा । अब इस पर उत्तर पक्ष का सूत्र भाष्य लिखा जायगा । परन्तु पाठकगण यह न समझलें कि मीमांसाकार के मत से सर्वांश में आ० समाजियों का मत मिलता होगा । क्योंकि मीमांसा का मत हम पहिले लिख चुके हैं कि कर्मात्मक वा यज्ञात्मक देवता मानना देवतावाद के मानने का एक प्रकार है। उस दशा में यज्ञ सम्बन्धी सब सामान देवमूर्त्ति माना जायगा । तब यज्ञ की पूजा प्रणाम नमस्कारादि सभी कर्त्तव्य उचित माना जायगा । और आर्यसमाजी न तो यज्ञ के विधान को कोई जाने न माने इत्यादि कारण इन का मत पूर्व मीमांसा से भी अधिकांश में विरुद्ध, नास्तिकता के अंशों

को अधिक लिये हुये है। केवल इन्द्रादि देवों को विग्रहवान् (साकार) न मानने वा जड़ मानने के अंश में आर्यसमाजीमत मीमांसा से मिलता है। अब उत्तर पक्ष का विचार देखिये—

सू० भावन्तु बादरायणोऽस्ति हि ॥ ३३ ॥

भा०—तुशब्दः पूर्वपक्षं व्यावर्त्तयति बादरायणस्त्वाचार्यो भावमधिकारस्य देवादीनामपि मन्यते। यद्यपि मध्वादिविद्यासु देवतादिव्यामिश्रास्वसम्भवोऽधिकारस्य तथाप्यस्ति हि शुद्धायां ब्रह्मविद्यायां सम्भवोऽर्थित्वसामर्थ्याप्रतिषेधाद्यपेक्षत्वादधिकारस्य। न च क्वचिदसंभव इत्येतावता यत्र सम्भवस्तत्राप्यधिकारोऽपोद्येत, मनुष्याणामपि न सर्वेषां ब्राह्मणादीनां सर्वेषु राजसूयादिष्वधिकारः सम्भवति, तत्र यो न्यायः सोऽत्रापि भविष्यति। ब्रह्मविद्यां च प्रकृत्य भवति लिङ्गदर्शनं श्रौतं देवाद्यधिकारस्य सूचकं, "तद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत सएव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणामिति, ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानिति, इन्द्रोह वै देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणाम्। छान्दोग्य० प्र० ८। खं०७" इत्यादि च स्मार्त्तमपि च गन्धर्वयाज्ञवल्क्यसंवादादि। यदप्युक्तं ज्योतिषि भावाच्चेति,अत्र ब्रूमः। ज्योतिरादिविषया अप्यादित्यादयो देवतावचनाः शब्दाश्चेतनावन्तमैश्वर्याद्युपेतं तं तं देवात्मानं समर्पयन्ति, मन्त्रार्थवादेषु तथा व्यवहारात्। अस्तिह्यैश्वर्ययोगाद् देवतानां ज्योतिराद्यात्मभिश्चावस्थातुं यथेष्टं च तं तं विग्रहं ग्रहीतुं सामर्थ्यम्। तथा हि श्रूयते। सुब्रह्मण्यार्थवादे—मेधातिथेर्मेषेति, मेधातिथिं हि काण्वायनमिन्द्रो मेषो भूत्वा जहारेति। स्मर्यते च—आदित्यः पुरुषो भूत्वा कुन्तीमुपजगामेति। मृदादिष्वपि चेत-

नाऽधिष्ठातारोऽभ्युपगम्यन्ते मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्नित्यादिदर्शनात्। ज्योतिरादेस्तु भूतधातोरादित्यादिष्वप्यचेतनत्वमभ्युपगम्यते, चेतनास्त्वधिष्ठातारो देवतात्मानो मन्त्रार्थवादादिषु व्यवहारादित्युक्तम् ॥

भावार्थ-सूत्र में (तु) शब्द पूर्व पक्ष को हटाने के लिये है। बादरायण आचार्य देवादि को वेदान्त विद्या का अधिकार होना मानते हैं। यद्यपि मध्वादि विद्या जिस में देवता विशेषों की उपासना मिली हुई है, उस में देवादि का अधिकार होना असंभव है। तथापि शुद्ध ब्रह्मविद्या में अधिकार अवश्य सम्भव है क्योंकि ज्ञानद्वारा उच्चकोटि की चाहना का निषेध देवादि में नहीं हो सकता और इसी की अपेक्षा को लेकर अधिकार सिद्ध होता है। तथा यह भी अनुचित है कि कहीं असम्भव हो तो जहां सम्भव हो वहां भी अधिकार हटाया जाय। क्या प्रायः मनुष्य लोग राजसूयादि यज्ञ नहीं कर सकते तो वे लोग छोटे २ पशुबन्धयज्ञादि भी न करें ?। अर्थात् जब सब ब्राह्मणादि मनुष्यों को भी सब यज्ञादि का अधिकार नहीं है तो जो रीति मनुष्यों में होगी वही देवों में भी मान लियी जावेगी। ब्रह्मविद्या के प्रसंग का आरंभ करके देवादि के अधिकार का सूचक श्रुति में चिन्ह दीखता है कि "जो २ देवताओं में ज्ञानी हो जाता है वही ब्रह्मतत्त्व में लीन हो कर ब्रह्मरूप हो जाता है। वैसे ही ऋषियों में तथा वैसे ही मनुष्यों में जो २ सोते से जाग कर सचेत ज्ञानी हो जाता वह भी कैवल्य मोक्षभागी होता है। जब देवता और दैत्यों को यह खबर मिली कि जो आत्मज्ञानी हो जाता है उस की सभी कामना पूर्ण होती हैं तब देव दानव दोनों ने अपने २ दल में कमेटी करके यह रिजोल्यूशन पास करडाला कि हम लोग उस आत्मा का खोज करेंगे कि जिस को जानकर सब लोकों का अधिकार तथा सब कामना प्राप्त हो सकती हैं। तदनुसार देवताओं में से इन्द्र और असुरों में से विरोचन ये दो प्रतिनिधि (डेलीगेट) चुन कर प्रजापति की सभा (पारलियामेंट) में भेजे गये" इत्यादि श्रुति से देवतादि को ब्रह्मविद्या का अधिकार सूचित होता है। और जो यह कहा था कि ज्योति नाम भौतिक जड़ तेज में आदित्यादि शब्दों का प्रयोग होता है चेतन देवता कोई नहीं हैं। इस पर हम कहते हैं कि-ज्योति आदि स्थानों वाले देवता वाची आदित्यादि शब्द ऐश्वर्यादि

से युक्त उस२ चेतन देवता स्वरूप को प्रकाशित करते हैं क्योंकि मन्त्र ब्राह्मण रूप वेद में वैसा ही व्यवहार दीखता है। देवताओं में स्वाभाविक अणिमादि अष्ट सिद्धियां होने से उन में ज्योति आदि रूपों से अवस्थित होने और उस उस विग्रह आकार (कि जिस २ देव का जो २ आकार वेद से सिद्ध होता है) को ग्रहण करने का दोनों प्रकार का सामर्थ्य विद्यमान है। सो वैसा ही सुब्रह्मण्यानिगद की अर्थवाद श्रुति में कहा है कि—

(मेधातिथेर्मेष) इन्द्रदेवता ने एक समय मेष—मेढ़ा का रूप धारण करके कण्व ऋषि के पौत्र मेधातिथि को हर लिया था। और स्मृति (महाभारत) में भी लिखा है कि आदित्य देवता पुरुष का रूप धारण करके कुन्ती कन्या के पास मन्त्र शक्ति से आकर्षित होकर गये थे। सो इस का आशय यह है कि चेतन अधिष्ठाता देव अपने एक आंशिक रूपान्तर से गये थे किन्तु सूर्यमण्डल ज्योति कहीं नहीं गयी। पृथिवी आदि में भी चेतन अधिष्ठाता देवता माने जाते हैं (कि जैसे स्थूल अधिष्ठान रूप मनुष्यादि शरीरों में जीव अधिष्ठाता है वही उस २ व्यक्ति के साथ मनन कर्त्ता होने से मनुष्य तथा देवदत्तादि पद वाच्य है) क्योंकि (मृदब्रवीत्) मट्टी बोली जल बोले। इत्यादि श्रुतिमें चेतन व्यवहार चेतन अधिष्ठातृ देवता परक है। तथा जैसे अधिष्ठान शरीरादि जड़ हैं वैसे आदित्यादि में भी ज्योति आदि पंच महाभूतों वा सूक्ष्म भूतों सम्बन्धी अंश जड़ भी माना जाता है। परन्तु मन्त्र ब्राह्मणादि में व्यवहार होने से चेतन देवता शक्ति अधिष्ठाता ही वास्तव में देवता का खास रूप है ॥

भा०—यदप्युक्तं मन्त्रार्थवादयोरन्यार्थत्वान्न देवताविग्रहादिप्रकाशनसामर्थ्यमिति। अत्र ब्रूमः—प्रत्ययाप्रत्ययौ हि सद्भावासद्भावयोः कारणं नान्यार्थत्वमनन्यार्थत्वं वा। तथाह्यन्यार्थमपि प्रस्थितः पथि पतितं तृणपर्णाद्यस्तीत्येवं प्रतिपद्यते। अत्राह—विषम उपन्यासः। तत्र हि तृणपर्णादि विषयं प्रत्यक्षं प्रवृत्तमस्ति येन तदस्तित्वं प्रतिपद्यते। अत्र पुनर्विध्युद्देशैकवाक्यभावेन स्तुत्यर्थेऽर्थवादे न पार्थगर्थ्येन वृत्तान्तविषया प्रवृत्तिः शक्याऽध्यवसाययितुम्। नहि महावाक्येऽप्रत्यायकेऽवान्तरवाक्यस्य पृथक्प्रत्यायकत्वमस्ति,यथा न सुरां

पिबेदिति नञ्वति वाक्ये पदत्रयसम्बन्धात् सुरापानप्रतिषेध एवैकोऽर्थो गम्यते न पुनः सुरां पिबेदिति पदद्वयसम्बन्धात्सुरापानविधिरपीति। अत्रोच्यते—विषम उपन्यासः। युक्तं यत्सुरापानप्रतिषेधे पदान्वयस्यैकत्वादवान्तरवाक्यार्थस्याग्रहणम्। विध्युद्देशार्थवादयोस्त्वर्थवादस्थानि पदानि पृथगन्वयं वृत्तान्तविषयं प्रतिपद्यानन्तरं कैमर्थक्यवशेन कार्माविधिस्तावकत्वं प्रतिपद्यन्ते। यथाहि—"वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः", इत्यत्र विध्युद्देशवर्त्तिनां वायव्यादिपदानां विधिना सम्बन्धः, नैवं वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति सएवैनं भूतिं गमयति, इत्येषामर्थवादगतानां पदानां, नहि भवति वायुर्वा आलभेतेत्यादि, वायुस्वभावसंकीर्त्तनेन त्ववान्तरमन्वयं प्रतिपद्यत एवं विशिष्टदैवत्यमिदं कर्मेति विधिं स्तुवन्ति। तद्यत्र सोऽवान्तरवाक्यार्थः प्रमाणान्तरगोचरो भवति तत्र तदनुवादेनार्थवादः प्रवर्त्तते। यत्र प्रमाणान्तरविरुद्धस्तत्र गुणवादनं। यत्र तु तदुभयं नास्ति तत्र किं प्रमाणान्तराभावाद्गुणवादः स्यादाहोस्वित्प्रमाणान्तराविरोधाद्विद्यमानार्थवाद इति प्रतीतिशरणैर्विद्यमानार्थवाद आश्रयणीयो न गुणानुवादः। एतेन मन्त्रो व्याख्यातः। अपिच, विधिभिरेवेन्द्रादिदैवत्यानि हवींषि चोदयद्भिरपेक्षितमिन्द्रादीनां स्वरूपं,नहि स्वरूपरहिता इन्द्रादयश्चेतस्यारोपयितुं शक्यन्ते। नच चेतस्यनारूढायै तस्यै तस्यै देवतायै हविः प्रदातुं शक्यते। श्रावयति च"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां ध्यायेद्वषट्करिष्यन्निति" नच शब्दमात्रमर्थस्वरूपं संभवति शब्दार्थयोर्भेदात्। यत्र यादृशं मन्त्रार्थ वादयोरिन्द्रादीनां स्वरूपमवगतं न तत्तादृशं शब्दप्रमाणकेन प्रत्याख्यातुं युक्तम् ॥

भावार्थः—और जो कहा था कि मन्त्र तथा अर्थवाद अन्य प्रयोजन के लिये हैं इससे वे दोनों देवतों की साकारादि सिद्धि नहीं कर सकते । इस पर कहते हैं कि—किसी वस्तु के होने में प्रतीति और न होने में अप्रतीति ही कारण है (अर्थात् जो कुछ प्रतीत होता वह (अस्ति) है तथा जो प्रतीत नहीं होता वह (नास्ति) नहीं है) किन्तु अन्यार्थ होना वा अन्यार्थ न होना वस्तु के होने न होने में कारण नहीं माना जा सकता [जैसे किसी ने कहा कि (चैत्र को बुलाओ) तो इस वाक्य से चैत्र व्यक्ति का होना प्रतीत होता है । ऐसा कोई नहीं कहता कि बन्ध्या पुत्र को बुलाओ क्योंकि बन्ध्या का पुत्र होता ही नहीं । इसी के अनुसार जब श्रुति में अग्नि आदि देवतओं का आवाहन लिखा गया तो प्रतीत हुआ कि अग्नि इन्द्रादि देवता कोई साकार हैं साकार ही आ सकता है निराकार आकाशादि का आना जाना नहीं बन सकता] और मन्त्र ब्राह्मण वाक्यों के अन्य प्रयोजनार्थ होने पर भी यह नियम नहीं होसकता कि वे साकार देवतादि का होना सिद्ध न कर सकें । क्योंकि अन्य प्रयोजन के लिये जाता हुआ मनुष्य मार्ग में पड़े घास पत्ते आदि का होना जानता देखता ही है । अर्थात् जब लोक में भी एक२ वाक्योपदेश से अनेक२ प्रयोजन सिद्ध होते हैं तब वैदिक अर्थवादादि वाक्यों से विधि स्तुति और साकार देवता सिद्धि आदि प्रयोजन सिद्ध क्यों नहीं हो सकते ? । इस पर पूर्व पक्षी कहता है कि मार्ग का उदाहरण ठीक नहीं है क्योंकि रास्ता में घास पत्ते आदि पड़े हुए प्रत्यक्ष दीखते हैं जिससे उनका होना निश्चित कर लेता है । और यहां विधि वाक्यों के उद्देशपोषणार्थ प्रवृत्त हुए अर्थवाद पृथक् रूप से देवतादि के साकार होने के वृत्तान्त की प्रतीत नहीं करा सकते हैं । ऐसा नहीं होसकता कि विधि तथा अर्थवाद दोनों मिलकर एक बड़ा वाक्य तो देवादि का साकार होना प्रतीत न करा सके और उस का अवान्तर भाग अर्थवाद रूप टुकड़ा देवादि का साकार होना सिद्ध करे । जैसे कि मद्य, न, पीवे, इस निषेधवाले वाक्य में तीन पदों से मद्य पीने का निषेध ही एक अर्थ प्रतीत होता है किन्तु उसी वाक्य के 'न' को छोड़ के अन्य दो पदों से यह दूसरा अर्थ सिद्ध नहीं होता कि'मद्य पीवे, इस पूर्व पक्ष पर सिद्धान्त वादी कहते हैं कि—यह करना ठीक नहीं क्योंकि सुरापान के निषेध वाक्य में तीनों पदों का एक अर्थ में अन्वय होने से अवान्तर वाक्यार्थ का ग्रहण न होना युक्त हो सकता है । परन्तु विध्युद्देश और अर्थवाद इन दोनों में अर्थवादस्थ पद देवतादि के साकार होने रूप वृत्तान्त विषयक पृथक् अन्वय को प्रतिपादन करके किस लिये अमुक काम करें इस अभिप्राय से काम विधि की प्रशंसा अर्थवाद करते हैं । जैसे (वायव्यं श्वेतम०)

इस श्रुति में विधि के उद्देश के साथ वर्त्तमान वायव्यादि पदों का विधि के साथ सम्बन्ध है। वैसे (वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता०) इत्यादि अर्थवाद गत पदों का सम्बंन्ध विध्युद्देश के साथ नहीं है। वायु के स्वभाव कथन के साथ अर्थवाद पदों का अवान्तर अन्वय निश्चित होता है फिर ऐसे विशिष्ट देवता वाला यह कर्म है इस रूप से अर्थवाद पद विधि की प्रशंसा करते हैं। सो जहां वह अवान्तर वाक्यार्थ प्रमाणान्तर से प्रतीत होता है वहां उस को कहने द्वारा अर्थवाद विधि की प्रशंसा में प्रवृत्त होताहै जैसे (अग्निर्हिमस्यभेषजम्) यह प्रत्यक्ष प्रमाणान्तर से सिद्धहै। और जहां अवान्तर वाक्यार्थ कहने में अर्थवाद प्रमाणान्तर से विरुद्ध होता वहां (जैसे "आदित्यो यूपः" यूप का आदित्य होना प्रमाणान्तर से विरुद्ध है तब आदित्य के तेज गुण से यूप की स्तुत की जानो) गुण रूप से विधेयस्तुति सूचित करता और जहां वे उक्त दोनों (अर्थात् प्रमाणान्तर का सद्भाव तथा प्रमाणान्तर से विरोध) ही नहीं हैं। जैसे (वज्रहस्तः पुरन्दरः) इत्यादि अर्थवादों में) वहां क्या प्रमाणान्तर का सद्भाव न होने से (आदित्यो यूपः) के तुल्य गुणवाद लिया जाय अथवा प्रमाणान्तर के साथ विरोध न होने से विद्यमानार्थ वाद माना जाय ?। निश्चय करने वाले विद्वानों को विद्यमान इन्द्रादि देवताओं का प्रकाशक अर्थवाद मानना चाहिये किन्तु गुणानुवाद नहीं। इसी के अनुसार मन्त्रों से साकार देवता सिद्धि जानो। और भी ध्यान देने योग्य बात है कि इन्द्रादि जिन के देवता नाम स्वामी भोक्ता हैं ऐसे पुरोडाशादि हविओं की प्रेरणा करते हुए विधि वाक्यों ने इन्द्रादि देवों के स्वरूपवान् होने की अपेक्षा स्पष्ट ही रक्खी है। क्योंकि यदि इन्द्रादि देवताओं का कोई भी रूप न हो तो मनुष्य अपने चित्त में उन का कुछ भी ध्यान नहीं कर सकता (निराकार शून्य वस्तु ध्यान में कैसे आवे ? अर्थात् कैसे भी नहीं) और ध्यान में लाये विना उस २ देवता के लिये पुरोडाशादि हविष् की आहुति दी नहीं जा सकती क्योंकि (यस्यै०) जिस २ देवता के नाम से हविष् ग्रहण किया हो याज्या ऋचा के अन्त में 'वौ३षट्' बोलता हुआ होता उसी २ देवता का ध्यान करे ऐसा श्रुति में साफ २ कहा है। और शब्द तथा वाच्यार्थ भिन्न २ दो वस्तु होने से शब्द मात्र ही अर्थ स्वरूप हो नहीं सकता। अर्थात् इन्द्रादिक शब्दों का वाच्यार्थ कुछ न हो तब इन्द्रादि शब्द ही वाच्यार्थ हों यह असंभव है। इस से मन्त्र तथा अर्थवादों में शब्दार्थ से जहां जैसा इन्द्रादि देवों का साकार स्वरूप प्रतीत होता है वह केवल शब्द मात्र के प्रमाण से प्रत्याख्यान करने योग्य नहीं है। अर्थात् मन्त्रार्थवादादि से विग्रहवती दे-

वता की जो सिद्धि होती है वह सर्वथा युक्तियों से भी सिद्ध है। और देवता का स्वरूप न मानना युक्ति प्रमाण दोनों से विरुद्ध है ॥

इतिहासपुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण सम्भवन्मन्त्रार्थमूलत्वात्प्रभवति देवताविग्रहादि प्रपञ्चयितुम् । प्रत्यक्षमूलमपि सम्भवति। भवति ह्यस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षम् । तथा च व्यासादयो देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते । यस्तु ब्रूयादिदानीन्तनानामिव पूर्वेषामपि नास्ति देवादिभिर्व्यवहर्त्तुं सामर्थ्यमिति स जगद्वैचित्र्यं प्रतिषेधेत् । इदानीमिव नान्यदापि सार्वभौमः क्षत्रियोऽस्तीति ब्रूयात्, ततश्च राजसूयादिचोदना उपरुन्ध्यात् । इदानीमिव च कालान्तरेऽप्यव्यवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रतिजानीत ततश्च व्यवस्थाविधायि शास्त्रमनर्थकं कुर्यात् । तस्माद्धर्मोत्कर्षवशाच्चिरन्तना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते । अपि च स्मरन्ति–स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः (योगसू०साधनपादे) इत्यादि । योगोऽप्यणिमाद्यैश्वर्यप्राप्तिफलकः स्मर्यमाणो न शक्यते साहसमात्रेण प्रत्याख्यातुम् । श्रुतिश्च योगमाहात्म्यं प्रख्यापयति–

पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखेसमुत्थिते,पञ्चात्मकेयोगगुणेप्रवृत्ते ।
न तस्यरोगोनजरानमृत्युः प्राप्तस्ययोगाग्निमयंशरीरम् ॥

ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां सामर्थ्यं नास्मदीयेन सामर्थ्यनोपमातुं युक्तम् । तस्मात्समूलमितिहासपुराणम् । लोकप्रसिद्धिरपि न सति सम्भवे निरालम्बनाऽध्यवसातुं युक्ता, तस्मादुपपन्नो मन्त्रादिभ्यो देवादीनां विग्रहवत्त्वाद्यवगमः । ततश्चार्थित्वादिसम्भवादुपपन्नो देवादीनामपि ब्रह्मविद्यायामधिकारः । क्रममुक्तिदर्शनान्यप्येवमेवोपपद्यन्ते ॥

भाषार्थ–पूर्व में यह सिद्ध किया जा चुका है कि मन्त्र ब्राह्मण रूप वेद से देवादि का साकार होना सम्यक् सिद्ध है तब उसी मार्ग से अर्थात् वेद मूलक होने से इतिहास पुराण भी प्रमाण कोटि में उपस्थित हो चुका । इस

प्रसंग में न्यायशास्त्र के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन का प्रमाण (न्याय० अ० ४। आ० १। सू० ६२।) कथन भी ध्यान में रखने योग्य है—

तदप्रमाणमिति चेन्न प्रमाणेन प्रामाण्याभ्यनुज्ञानात्। प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते "ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन्, इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदइति„ तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति ॥

भा०—कोई कहे कि इतिहासपुराण प्रामाणिक ही नहीं हैं सो ठीक नहीं क्योंकि स्वतः प्रमाण सिद्ध वेदभाग रूप ब्राह्मण ने ही इतिहासपुराण का प्रमाण स्वीकार किया है कि "अथर्व वेदी लोगों ने कहा है कि यह इतिहासपुराण चार वेदों में पांचवां वेद है अर्थात् वेदों के तुल्य प्रामाणिक है।" इस से इतिहासपुराणों को अयुक्त कहना अयुक्त है। यदि कोई कहे कि इतिहास पुराण शब्दों से ब्राह्मण ग्रन्थों का ग्रहण करेंगे तो ब्राह्मण ग्रन्थ चार वेदों के अन्तर्गत (जगन्मोहन जी ने भी) मान लिये तब वे पांचवां वेद नहीं हो सकते और जब ब्राह्मण स्वयं प्रमाणी भूत बनता हुआ इतिहासपुराण का प्रमाणत्व सिद्ध करता है तो इतिहासपुराण ब्राह्मण से भिन्न सिद्ध हो गये। क्योंकि आप ही अपना प्रमाण नहीं बन सकता है। तथा जिस इतिहासपुराण का विषय महर्षि वात्स्यायन ने इसी प्रकरण में लोक का वृत्त बताया है। उसी इतिहास पुराण का प्रामाणिक होना महर्षि वात्स्यायन सिद्ध करते हैं। और ब्राह्मण का विषय इतिहास पुराण के विषय से भिन्न यज्ञ है। इत्यादि कारण इतिहास पुराण शब्दों से ब्राह्मण ग्रन्थों का ग्रहण किसी प्रकार भी कोई नहीं कर सकता किन्तु महाभारतादि इतिहास और ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण ही इतिहास पुराण होने यहां सिद्ध हैं। तब उन्हीं का महर्षि वात्स्यायन ने प्रामाणिक होना ऊपर सिद्ध किया है। इस प्रकार जब इतिहास पुराणों का प्रामाणिक होना सिद्ध होगया तो उन इतिहास पुराणों के सहस्रों प्रमाणों से देवताओं का साकार होना भी सिद्ध ही है।

देवतादि के साकार होने में प्रत्यक्ष प्रमाण होना भी सम्भव है क्योंकि सम्प्रति हम लोगों को देवता प्रत्यक्ष न होने पर भी हमारे पूर्वज प्राचीन लोगों को देवता लोग प्रत्यक्ष मिलते थे। जैसे महर्षि व्यासादि देवतादि के साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे यह बात स्मृति पुराणादि से सम्यक् सिद्ध है। यदि जो कोई कहे कि आधुनिक मनुष्यों के तुल्य पूर्वज महर्षियों को भी देवतादि के साथ व्यवहार करने का सामर्थ्य नहीं था तो वह मनुष्य जगत् की विचित्रता का ही निषेध करे कि सब कालों में एक सी शक्तिवाले मनुष्यादि होते

हैं ऐसा सिद्ध करे तो यह भी कह सकता है कि इस समय के तुल्य पूर्व काल में भी कोई चक्रवर्ती क्षत्रिय राजा नहीं हुआ। और ऐसा मान भी लेवे तो वेद में चक्रवर्ती राजा क्षत्रिय के लिये कहे राजसूय यज्ञादि का भी खण्डन करे कि जैसे अब कोई चक्रवर्ती क्षत्रियराजा नहीं है वैसे पूर्वकाल में भी होना न ठहरे तो श्रुतिस्मृति इतिहास पुराण सभी मिथ्या ठहरें। मैत्र्युपनिषद् के आरम्भ में सुद्युम्नादि १५ चक्रवर्ती क्षत्रिय राजा गिनाकर कहा है कि इत्यादि बहुत चक्रवर्त्ती सार्वभौम राजा हुए। इत्यादि सब प्रामाणिक ग्रन्थ क्या मिथ्या हैं?। और अब के तुल्य वर्णाश्रम धर्मों का भी उठजाना पूर्वकाल में भी मानें तब वर्णाश्रम धर्म का विधान करनेवाले धर्म शास्त्रादि को व्यर्थ मान लेना चाहिये। इस प्रकार काल भेद से सृष्टि की विचित्रता न मानने पर वेदशास्त्रादि का निरर्थक होना मात्र ही दोष हो सो नहीं किन्तु यह बात युक्ति से भी विरुद्ध है कि सब समयों में सृष्टि एकसी रहे। एकही मनुष्य अपनी अवस्था में पचास वर्ष के अनुभव से बहुतसा परिवर्त्तन एक ही शरीर में देख लेता है तब सौ वर्ष की आयुवाला उससे भी अधिक देख लेगा। इसी प्रत्यक्ष प्रमाण से जान सकते हैं कि हजारों लाखों वर्ष पूर्व सृष्टि में अब से बहुत बड़ा अन्तर हो चुका है। तिससे यह सिद्ध है कि धर्म की प्रबलता होने के कारण पूर्वज महर्षि लोग देवताओं के साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे। और यही बात योग सूत्र से भी दिखायी है कि नित्य नियम से श्रद्धा और विधि के साथ बहुत काल तक निरन्तर वेदाभ्यास करनेवाले मनुष्य का अपने इष्ट देवता से मेल मिलाप होता है। अणिमादि अष्ट सिद्धियों की प्राप्तिरूप फल वाले योग दर्शन का खण्डन भी कोई पुरुष साहस मात्र से नहीं कर सकता है। क्योंकि श्रुति भी योगाभ्यास की महिमा को प्रकाशित करती है कि "पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पांच तत्त्वात्मक शरीर में योग की धारणाप्रवृत्ति यथार्थ सम्यक् होने पर योगी पुरुष का योगाग्निमय शरीर हो जाता है। अर्थात् प्रबलता से प्रज्वलित हुआ योगाग्नि पञ्चतत्त्वात्मक शरीर में रहने वाले मृत्यु रोग शोकादि निकृष्टांशों को भस्म कर देता है तब उस योगी को रोग, जरा, मृत्यु कोई भी नहीं दबा सकता है" जिस के अनुष्ठान से ऐसा आश्चर्य जनक फल श्रुति दिखाती है वही योग शास्त्र देवताओं से मिलने की रीति बतलाता है। और मन्त्र ब्राह्मण रूप वेदों को साक्षात्करने वाले ऋषियों का सामर्थ्य भी हम साधारण लोगों के सामर्थ्य से मिलाया नहीं जा सकता। इस से सिद्ध हुआ कि वेदादि शास्त्रानुकूल होने से इतिहास पुराण निर्विकल्प प्रामाणिक हैं। इस कारण उस से सिद्ध देवताओं का साकार होना भी सर्वथा माननीय है। तथा सम्भव होने पर लोक प्रसिद्धि को भी निर्मूल निराश्रय नहीं मानना चाहिये। क्योंकि पूर्वोक्त प्रकार से जब श्रुति स्मृति

इतिहास पुराणादि सभी के प्रमाणों से साकार देवतावाद सिद्ध होता है तब उसी का सहारा लेती हुई लोकप्रसिद्धि भी समूल ठहरती है। इस रूप से मन्त्रादि के प्रमाणों द्वारा देवतादि का साकारादि स्वरूपवान् चेतन होना निर्भ्रान्त सिद्ध हो जाता है। और इसी से अर्थी होना आदि सम्भव होने से देवतादि का ब्रह्मविद्या में अधिकार भी सिद्ध हो गया। क्रम से मुक्ति दिखाने वाले श्रुति आदि के वाक्य भी देवतादि को स्वरूपवान् साकार मान कर ब्रह्म विद्या के अधिकारी मानने से ही ठीक २ संघटित हो सकेंगे। प्रयोजन यह है कि शास्त्रों में दो प्रकार से मुक्ति दिखायी गयी है। एक तो किन्हीं अति प्रबल योगाभ्यासादि साधनों द्वारा मनुष्य शरीर से ही श्रीशुकदेवादि के तुल्य मोक्ष हो जावे। द्वितीय क्रम से ऊपर २ की कक्षाओं में पहुंचते (दर्जे ब दर्जे तरक्की पाते) हुए मोक्ष भागी होना। सो एक साथ मनुष्य शरीर से कैवल्य मोक्ष होना तो कम सम्भव है, कभी कोई विरलाही ऐसा हो सकता है, क्योंकि एक साथ ऊपर कूद के चढ़ जाना महा कठिन है और सीढ़ी २ चढ़ के जाना उस से सुगम है। मुक्ति के क्रम का विचार (बृहदारण्योपनि० अ० ६ ब्रा०३) से इस प्रकार जानो कि मनुष्यों में तपस्वी ब्राह्मण, जित लोक पितर, गन्धर्व, कर्म देव, आजान देव, प्रजापति, ब्रह्मलोक, ये मुख्य सात कक्षा हैं भूआदि सात ही व्याहृति हैं। इन एक २ कक्षा में अवान्तर दर्जे अनेक होंगे। इन्हीं कक्षाओं में क्रमशः बढ़ते जाना क्रम मुक्ति कहाती है। कैवल्य मोक्षकी अपेक्षा से तो देवता लोग भी बन्धन में हैं परन्तु मनुष्यों की अपेक्षा एक प्रकार से विदेह मुक्त देवता भी हैं। जैसे अपने से नीचे निर्धनों की अपेक्षा तो लक्षाधीश मनुष्य भी बड़ा धनी श्रीमान् है परन्तु अर्बों खर्बों धन वालों की अपेक्षा वही लक्षाधीश निर्धन गरीब माना जायगा। इसी के अनुसार जहां २ शास्त्रों में (अमरा निर्जरा देवाः) अजर अमर वा मुक्त देवताओं को कहा है वहां सर्वत्र मनुष्यों की अपेक्षा से है। और जहां इन को अनित्य नाशवान् आदि कहा है वह सब कैवल्य मोक्ष की अपेक्षा से जानो ॥

पाठक महाशयो! यह देवता विषय में ऊपर का सब लेख वेदान्त दर्शन व्यास सूत्र और श्रीमान् भगवान् शंकराचार्य जी के ब्रह्म मीमांसा भाष्य के सहित लिखा है। इस के भाषानुवाद में अपनी ओर से भी बीच २ में उपयोगी विचार लिखा गया है। कोई महाशय इस विस्तृत लेख को व्यर्थ न मानें कि एक ही देवता विषय में इतनालम्बी भूत लेख क्यों लिखा गया?। क्यों कि वास्तव में यही सनातन धर्म का असली स्वरूप वा यही मूल है। इसी के ठीक २ जानने मानने से मनुष्य आस्तिक धर्मात्मा हो जाता इसी की उपेक्षा करने से नास्तिक अधर्मी हो जाता है। यही विचार अवतारों को सिद्ध करता है, इसी से प्रतीकोपासना मूर्त्ति पूजा सब सिद्ध हो जाती हैं। इसी विचार

पर आरूढ़ हुआ मनुष्य परमेश्वर की ओर चलता कहा जायगा। इसी विचार के ठीक २ पुष्ट हो जाने से वेद विरुद्ध वर्त्तमान आर्यसमाजादि आधुनिक मत सूर्य के उदय में उल्लूपक्षी के समान वीच में ही लटकते रह जाते हैं। फिर उन को कुछ नहीं सूझता अन्धे हो जाते हैं। इसी से पाठक महाशय यह भी सन्देह न करें कि समाजियों के ऊपर विशेष रूप से कुछ नहीं लिखा गया क्योंकि वास्तव में अब आर्यसमाजियों की ऐसी कोई बात शेष नहीं रही जिस का ठीक २ खण्डन न हो गया हो। अर्थात् जितना कुछ अब तक लिखा गया है वह समझदारों के लिये पर्याप्त (काफी) है। रहे हठी मूर्खादि उन के लिये अनुभवी लोग पहिले ही लिख गये हैं-(ब्रह्मापि तं नरं नरञ्जयति। मूर्खस्य नास्त्यौषधम्) कि ब्रह्मा जी भी आकर ज्ञान लवदुर्विदग्ध हठी मूर्खों को समझावें तो भी वे कदापि नहीं मानेंगे इसी से उन मूर्खों के लिये कोई औषध ही नहीं है।

और यह बात हम पहिले भी कई वार लिख चुके हैं कि कूंजड़ियों की सी लड़ाई करना आपस में ही भूंख२ कर काटने को दौड़ना जैसा कि वे० प्र० सम्पादकादि करते हैं। वह उन के लिये तो इस कारण भी ठीक है कि उन के मत में किन्हीं अच्छे गूढ़ विषयों में कोई अच्छे २ मन्तव्य सिद्धान्त तो हैं ही नहीं जिन पर वे लिखें किन्तु उन के यहां यही मूल सिद्धान्त पहिले से चला है कि सब को बुरा कहो सब अच्छे विचारों वा सिद्धान्तों को लौट देना वा खण्डन करना। तब जिन का जो काम है वही उन से होता है इस कारण सम्पादक वे० प्र० आदि समाजी यदि हम (सम्पादक ब्रा० स०) को बुरा भला कहने लिखने में कष्ट उठाते हैं। तो यह चिन्ता की बात नहीं है क्योंकि यह तो उन के मत का स्वाभाविक काम ही है (सर्वः स्वार्थं समीहते) सभी अपना २ काम करते हैं। तदनुसार हमारा काम यही है कि हम समाधान करें वेद शास्त्रों के गंभीर सिद्धान्तों को यथामति प्रकाशित कर के संसारी मनुष्यों का कुछ यथासम्भव उपकार करें

पाठक महाशय! यद्यपि इस देवता के साकार होने विषय में वेदान्त दर्शनकारों ने इतना ही मात्र विचार नहीं किया है कि जितना ऊपर लिखा गया किन्तु बहुतसा विचार और भी वेदान्त दर्शन में यत्र तत्र मिलेगा जिस सब का संग्रह विस्तार भय से हमने नहीं किया है। वेदान्तदर्शन का मूल सिद्धान्त एक शुद्ध चेतन ब्रह्म का स्वरूप निरूपण करना है। वह शुद्ध चेतन ब्रह्म एक ही है। अनेक नाम रूपों में प्रतीत होता हुआ भी एक ही रहता है। हम मनुष्य लोग काम क्रोधादि विषयरूप कीचड़ में अधिक२ फंसते२ बहुत बड़ी अधोगति में आगये हैं। ईश्वरीय वास्तविक ज्ञान से हमारा बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। इस कारण अब कूदकर एक साथ ईश्वर के

निकट नहीं पहुंच सकते और दूर होजाने से सहज में जान भी नहीं सकते। जैसे कोई पुरुष दश मंजला मकान से नीचे क्रमशः उतर आवे तो सहज में वा कूदकर एक साथ ऊपर नहीं जा सकता किन्तु फिर सीढीर चढ़ के जा सकता है। इसी के अनुसार ईश्वरांश रूप देवताओं की पूजा उपासना द्वारा वा देव मूर्तियों के निरन्तर श्रद्धा भक्ति से पूजने द्वारा अथवा और भी नीचे किसी देवता के पूर्ण भक्त वा ज्ञानी अथवा पूर्ण वेद वेत्ता धर्म निष्ठ आदि पुरुषों की सेवा सत्संगादि द्वारा मनुष्य ईश्वर की ओर चल सकता है। क्यों कि प्रत्येक प्राणी क्रम से काम करने पर सफलता प्राप्त कर सकता है। यही अभिप्राय क्रम से मुक्ति कहनेवाले शास्त्रों का है। इसी मतलब से देवता वाद का विचार प्रवङ्ग प्राप्त वेदान्त में किया गया है। चाहें यों कहो कि वेदान्त के सूत्र भाष्यों द्वारा देवता विषय में वेदादि सब शास्त्रों का आशय उक्त रीति से दिखाया गया है कि वेद के कर्म उपासना भाग में विग्रहवती देवता मानने में ही वेद का तात्पर्य है। और पूर्वमीमांसाकार का जो यह सिद्धान्त है कि कर्मात्मक वा यज्ञात्मक देवता मानें जावें सो यह समझने के लिये एक कक्षा है और ठीक भी है परन्तु कर्म उपासना विग्रहवती देवता मानकर ही होसकती है। क्योंकि समझने के लिये जो विचार होते हैं वे सब व्यवहार कोटि में वैसेही नहीं लाये जासक्ते। जैसे नैयायिकादि सब के मत से काल विभु व्यापक अखण्ड एकरस पदार्थ है इस कालके टुकड़े वा भाग किसी प्रकार कोई कदापि नहीं कर सकता। परन्तु वेद शास्त्रादि सब में कल्प, मन्वन्तर, युग, संवत्सर, उत्तरायण, दक्षिणायन, ऋतु, मास, पक्ष, सप्ताह, तिथि, वार, प्रहर, घटी, मुहूर्त, इत्यादि काल विभाग वा काल के खण्ड लिखे हैं। सभी मतानुयायियों को अपने २ व्यवहार की सिद्धि के लिये काल के टुकड़े मानने पड़ते हैं! हम लोग कहते हैं कि इतना काल व्यतीत हो गया। सो व्यतीत होना ही खण्डित होना है। प्रयोजन यह कि व्यवहार सिद्धि काल के विभाग माने बिना कदापि नहीं हो सकती। और काल का अखण्ड मानना समझने के लिये है। वैसे ही कर्मात्मक देवता मानना समझने के लिये है। यज्ञादि व्यवहार के लिये विग्रहवती साकार देवता ही माननीय है इसी लिये सृष्टि के आरम्भ से अब तक कर्मात्मक देवता मानकर कोई भी यज्ञादि कर्म कहीं नहीं हुआ और किसी भी कर्म काण्ड के ग्रन्थ में कर्मात्मक देवता मानकर यज्ञादि करना नहीं लिखा गया। इससे पूर्व मीमांसा का मत समझने के लिये रहा यह सिद्ध है॥

आर्यसमाजी मत समीक्षा–

पाठक महाशय ! हम ऊपर द्वैत मीमांसा के लेख में सूचित कर चुके हैं कि आ० समाजी मत विना नींव की भीत है । इस के निर्मूल कल्पित सर्वथा मिथ्या वेजड़ के मत पर कुछ विशेष लिखने वा उस के खण्डन करने की आवश्यकता अब अधिक नहीं रही क्योंकि मुंशी जगन्नाथ दास जी मुरादाबाद निवासी आदि वैश्यों तक ने समाजी मत का मिथ्या होना सम्यक् सिद्ध कर दिखाया कि जो संस्कृत के बड़े विद्वान् भी नहीं हैं । तब ऐसे मिथ्या निर्मूल मत पर हमें भी विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है । तथापि जैसे मृगतृष्णिका को सभी जानते मानते हैं कि मृगतृष्णिका में जल बुद्धि मिथ्या होती है तौ भी वह भ्रम संसार भर से सर्वथा निवृत्त अब तक नहीं हुआ । प्रत्येक ग्रीष्म ऋतु में मृगादि को अब भी जल का भ्रम वैसा ही हुआ करता है । वैसे ही धर्म के मार्ग को भूले हुए धर्म का मर्म न जानने वाले मनुष्यों को मृगतृष्णिका के तुल्य निर्मूल आर्यसमाज का मत भी कुछ जान पड़ता है कि यही सत्य है वा सत्य होगा । अनेक साधारण लोगों को यह भी कहने का मौका मिल जाता है कि वे० प्र० आदि समाजी पत्र तो आ० स० पर कुछ न कुछ लिखते ही रहते हैं पर आ० स० में उन का नाम पता देकर कुछ नहीं लिखा जाता और अनेक लोग कहने लगते हैं कि सम्पादक आ० स० को उत्तर देने की शक्ति ही कदाचित् न हो । इत्यादि विचार से हमे कुछ लिखने पड़ता है ॥

परन्तु वे लोग ध्यान रक्खें कि एक हाथी अपनी गंभीर चाल पर चला जा रहा है और उस के इधर उधर कुत्ते भूंकते जाते हैं हाथी कुछ नहीं बोलता तब क्या कुत्तों का विजय तथा हाथी का पराजय होना वे लोग मानलेंगे ? । यदि हाथी का पराजय नहीं मानेंगे तो वैसा ही यहां भी समझ लेवें । तथापि हम कभी २ दिग्दर्शन मात्र कुछ लिख दिया करेंगे । तदनुसार यहां भी कुछ लिखते हैं ।

वे० प्र० के ९ । १० । ११ । १२ । तथा १ ये पांच अं० हम ने देखे तो केवल पांच बातें शास्त्र सम्बन्धी अंशों से कुछ लेश मात्र सम्बन्ध रखने वाली ज्ञात हुईं । बाकी कहीं आत्मश्लाघा, कहीं कूंजड़ी के सभी वेर मीठे के तुल्य अपने मिथ्या मत की बड़ाई, और कहीं कूंजड़ियों कीसी पर निन्दा (परापवाद) सो यह तो इन लोगों का स्वाभाविक काम ही है । अस्तु–

उक्त पांच विषयों में पहिला (वेद मन्त्रार्थ प्रकाश) है। यह विषय वे० प्र० अं० ९। १० के १८ पृष्ठों में ऐसा निरर्थक बेहूदापन से लिखा है कि जिस को देख २ के समझदार आ० समाजी लोग भी हंसते होंगे। ऋग्वेद मण्डल १ सू० १ मं० ७। (उपत्वाग्ने०) इस मन्त्र के ऊपर लिखा है कि "पञ्चमहायज्ञ विषयकः" सो यह मूल बात ही सर्वथा अशुद्ध और सब निरुक्तादि से विरुद्ध है। क्योंकि इस मन्त्र में पञ्च महायज्ञों का कहीं नाम निशान भी नहीं है। न तो पञ्चमहायज्ञ शब्द है और न पांच में से किसी एक दो का भी नाम है। तथा इस के किसी शब्द में भी ऐसा अर्थ नहीं निकलता जिस से पञ्चमहायज्ञों के लिये कुछ भी संकेत निकले। इन वे० प्र० के लिखे वेद मन्त्रों के अर्थ सर्वथा ही मिथ्या जिस रीति से पाठकों को ज्ञात हो सकते हैं उस सब रीति को हम यहां संक्षेप से नमूनार्थ दिखाये देते हैं उसी के अनुसार इनके आगे पीछे लिखे सब मन्त्रार्थों को पाठकलोग वेद विरुद्ध मिथ्या समझ लेवें फिर बार२ हमें इस अंश पर लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

स्वा० दयानन्द जी ने भी ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद के प्राचीन भाष्य माना है इस लिये हम ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रमाण उक्त मन्त्र पर दिखाते हैं कि–ऐतरेय ब्रा० पं० १ क० ३०।

तस्माद्धस्याग्निं पुरस्ताद्धरन्त्युपत्वाग्नेदिवेदिवे,उपप्रियं,-पनिप्नतमिति तिस्रश्चैकां चान्वाह॥

इसका अभिप्राय यह है कि अग्निष्टोमादि सोमयागों में जब अध्वर्यु कहे कि (अग्नीषोमाभ्यां प्रणीयमानाभ्यामनुब्रूहि) तब यजमानादि सोम से आगे२ अग्नि को लेकर चलें और होता ऋत्विज् (उपत्वाग्ने०) इत्यादि तीन ऋचाओं से अग्नि देवता की स्तुति करे। क्योंकि सदस्यशाला और हविर्धानशाला के बीच से लेजाते हुए सोममें असुर राक्षसादि हानि करते हैं इस कारण सोम से आगे२ अग्नि देवता को लेचलें। जो अग्नि देवता असुर राक्षसों का नाशक है। जो अग्नि असुरादि का नाशक है उसी की स्तुति इन मन्त्रों द्वारा की गयी है। तथा शांखायन श्रौत कल्प सूत्र अ० ५। क० १४ में (होता देव, उपत्वाग्न इति तृचौ) अर्थात् (होता देव०) इत्यादि तीन और (उपत्वाग्ने०) इत्यादि तीन ऋचा इन छहों को अग्नीषोम के प्रणयन समय में होता पढ़े। अब पाठक लोग मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प तीनों का मिलान करके विचारें कि सोमयागों के अग्नीषोम प्रणयन कर्म में (उपत्वाग्ने०) मन्त्र का विनि-

योग है। और जैसे विवाह के समय और२ वेद मन्त्र पढ़े जाते हैं उनका अर्थ भी विवाह विषय में ही संघटित होता है। किन्तु जिन मन्त्रों का विवाह में विनियोग है उन का अर्थ भी उसी प्रकरण में ठीकर लगता है चाहें यों कहो कि विवाहादि सभी कर्मकाण्ड में उसी२ अवसर सम्बन्धी अर्थ को प्रतीत कराने के लिये ही वहां२ वे२ मन्त्र पढ़ेजाते हैं और इसी अभिप्राय से महर्षि लोगों ने उन२ मन्त्रों का विनियोग नियत किया है। यही बात उन आर्य समाजियों को भी अवश्य माननी पड़ेगी कि जो विवाहादि कर्मकाण्ड को मानते होंगे। तब इस दशा में (उपत्वाग्ने०) मन्त्र से पञ्चमहायज्ञों का अर्थ निकालने की सम्पादक वे० प्र० की चेष्टा सर्वथा वेद विरुद्ध और मिथ्या सिद्ध होगयी। जिसको बुद्धिमान् निष्पक्ष आर्यसमाजी भी अवश्य ठीक मान लेंगे परन्तु अपना दोष वा भूल कहने का समय न होने से मुख से कदापि न कहेंगे। मन्त्र के सभी पदों का अर्थ व्याकरण कोषादि सभी से विरुद्ध मन माना होने से महा मिथ्या तथा वेद विरुद्ध है जैसे (उप-आ-इमसि) उपास्महे, सेवामहे, शुश्रूषामहे, परिचरामः ॥

यहां ये चारों अर्थ अशुद्ध हैं उप शब्द का कोष व्याकरणादि के अनुसार समीप अर्थ है तथा आङ्पूर्वक इण् धातु का अर्थ आना है। अर्थात् मन्त्र का स्पष्ट संक्षेपार्थ यह है कि "हे अग्निदेव ! कर्मों का अनुष्ठान करने वाले हम लोग प्रति दिन रात्रि में तथा दिन में समझ पूर्वक श्रद्धा से नमस्कार प्रणाम करते हुए तुम्हारे समीप आते तुम्हारे शरणागत होते हैं" इसप्रकार वेद के शुद्ध स्पष्टार्थ की खराबी सम्पादक वे० प्र० ने १८ पृष्ठों में की है जिस से कुछ भी मतलब किसी की समझ में नहीं आ सकता है।

इस अंश पर हम दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ कहते हैं कि पञ्चमहायज्ञों के पांच नाम भी कोई समाजी अपने माने हुए वेद में नहीं दिखा सकता। यदि किसी को शक्ति हो तो वह दिखावे। जब कि पांच महायज्ञों के नाम भी नहीं दिखा सकता तो उन का विधान वेद में लावेगा ही कहां से। रहे मन्वादि धर्मशास्त्र सो उन का प्रमाण माना नहीं जासकता क्योंकि जब तक स्वतः प्रमाण वेद में न हो तब तक वह वेद विरुद्ध ही रहेगा। इस से पञ्चयज्ञादि समाजी मत में हैं ही नहीं। इसी लिये ये लोग किसी बात को मानते भी नहीं लेख करने का प्रयोजन अपने पंजे में फंसे भोले भाले समाजियों से रु० वसूल करने मात्र के लिये किया जाता है॥

उक्त पांच विषयों में दूसरा विषय "बरेली शास्त्रार्थ" है । यह विषय समाजियों ने केवल दो विचारों से उठाया है। एक तो सनातनधर्म के सम्प्रदाय भेदों के विरुद्धांश मात्र को ले कर सनातनधर्मियों में विरोध फैलाना, द्वितीय मिथ्या बातों का पक्ष ले कर अपनी मिथ्या प्रशंसा करना ।

हम स्पष्टाक्षरों में सर्व साधारण महाशयों को विदित करते हैं कि दुनिया भर में सब से अधिक बुरा मिथ्या और धर्मांशों से रहित तथा अपने वा अन्य के लिये हानि कारक कोई मत है तो उस का नाम दयानन्दी मत है । यद्यपि अन्य ईसाई, मुसलमान, वाम मार्गी, चार्वाक, बौद्ध आदि मत भी अनेक अंशों में अधिक २ बुरे प्रतीत होते हैं । तोभी उन के दोष तत्तन्मतानुयायी मनुष्यों में बढ़ गये हैं किन्तु उन २ मतों के मूल ग्रन्थों का उद्देश वैसा वास्तव में नहीं है । कि जैसे गोहिंसा करना कुरान शरीफ से कोई कर्त्तव्य काम नहीं सिद्ध होता इसी लिये रामपुर राज्य के एक मोलवी साहव ने गोरक्षा करना उत्तम ठहराया है । तथा श्रीमान् अमीर काबुल ने बकराईद के दिन गोवध रुकवा दिया इत्यादि काम अनेक जगह हुए और होते हैं जिन से स्पष्ट सिद्ध है कि गोहिंसा करना कोई अच्छा काम होता तो मुसलमान लोग किसी की भी बात न मानते । इसी के अनुसार उन २ मतों में कुछ २ सूक्ष्म उद्देश तथा विचार आ० समाजी मत से अवश्य अच्छे हैं । जब यह दयानन्दी मत मिथ्यापन तथा अनुचित मन्तव्यों से इतना अधिक भरा है तो इस को अपने से अच्छे सम्प्रदायों पर आक्षेप करते लज्जा संकोच क्यों नहीं होता ? । यह छोटा वा थोड़ा आश्चर्य नहीं है ॥

स० ध० सभा आज़मगढ़ के वार्षिक जलसा पर चक्राङ्कितों का प्रस्ताव कई मनुष्यों ने हमारे सामने भी उपस्थित किया था । क्योंकि इस विषय की विशेष चर्चा आर्यसमाजियों ने ही सर्वत्र कुछ २ फैलादी है । तब हम ने यह उत्तर दिया था कि–

इस प्रश्न को अनेक लोग परनिन्दा करने की बुद्धि से उठाते हैं सो ठीक नहीं वे लोग परनिन्दा के दोष भागी अवश्य होंगे । यदि आर्यसमाजी खयालातों से यह प्रश्न उठाया जाता है तो हम स्पष्ट कहते हैं कि दयानन्दी मत से सैकड़ों अंशों में चक्राङ्कित श्री वैष्णव सम्प्रदाय अवश्य अच्छा है । क्योंकि पति परदेश जावे तो घर में स्त्री अन्य से नियोग कर ले और लौट आवे तब उस को छोड़ देवे । इस का मतलब यह हुआ कि पति के विदेश

जाने और वायदे पर न आने पर स्त्री अन्य पुरुष से प्रसिद्ध ही व्यभिचार करे। और गर्भवती होती अपने पति से संयोग न करे परन्तु पति के विद्यमान होते भी अन्य पुरुष के लिये सन्तान पैदा कर देवे। इत्यादि महाघृणित तथा असम्भव अनेक बातें आर्यसमाजियों में अत्यन्त बुरी हैं वैसी बातें चक्राङ्कितादि सनातन धर्म के किसी सम्प्रदाय में नहीं हैं। इस कारण समाजियों से चक्राङ्कितादि सभी सम्प्रदाय अच्छे हैं तब अपने से अच्छे पर समाजी लोग किस मुख सें आक्षेप करते हैं ?। उन को उचित है कि समाजी लोग अपने दोषों का परित्याग करके शुद्ध बनें।

यदि सनातन धर्म की रीति से प्रश्न है तो सनातन धर्म का सिद्धान्त यह है कि जिन के यहां कुल परम्परा से जो सम्प्रदाय चला आता है उन के लिये वही ठीक है उसी मार्ग से वे लोग बदनियती छोड़ के शुद्ध मन के साथ ईश्वर का आराधन करें उन लोगों का कल्याण होगा। इसी के अनुसार चक्राङ्कित सम्प्रदाय तभी जिन के यहां कुल परम्परा से चला आता है उन के लिये वही ठीक है।

इस पर एक महाशय बोले कि हम यह पूछना चाहते हैं कि चक्राङ्कित होने का आडर वेद में है वा नहीं ? यदि वेद में वैसी आज्ञा है तो सभी करें और वेद में नहीं है तो वेद विरुद्ध होने से त्याज्य होगा।

इस पर हम ने यह उत्तर दिया कि प्रथम तो यह नियम नहीं दीखता और न कोई भी वेदमतानुयायी मान सकता है कि वेद ही केवल प्रमाण हैं और कोई बात प्रत्यक्षादि प्रमाणों वा अन्य ग्रन्थों से सिद्ध होने पर भी प्रामाणिक ही नहीं मानी जाय। क्योंकि सब से अधिक मिथ्या ही वेद प्रमाण का दम भरने वाले आर्यसमाजी लोग, पञ्चमहायज्ञों के नाम, यज्ञोपवीत का विधान, परमेश्वर यह नाम तथा आर्यसमाज शब्द इत्यादि शब्द वेद में अब तक न दिखा सकने पर भी प्रामाणिक मानते ही जाते हैं, और अपनी धींगा धींगी करते ही जाते हैं। ऐसी दशा में वे लोग स्वयं जब अनेक ऐसी बातों को प्रामाणिक मानते हैं जिन को वेद में नहीं दिखा सकते तब किसी वेद मतानुयायी से कैसे कह सकते हैं ? कि तुम्हारा अमुक कर्म वेद में न होने से प्रामाणिक नहीं। यदि फिर भी कहते हैं तो वे शरम निर्लज्ज और मूर्ख हैं।

और द्वितीय वार्त्ता यह है कि सेठ माधवप्रसाद वैश्य चूरू निवासी आदि अनेक वेदामतानुयायी लोगों ने स्त्री का द्वितीय पति होने रूप नियोग

विधवा विवाह का वे० प्र० सम्पादक को खुले मैदान चैलेंज दे २ कर वेद विरुद्ध होना सिद्ध कर दिखाया तथा ईश्वर का अवतार (साकार) होना आदि अनेक विषय अब तक वेद प्रमाणों से सम्यक् सिद्ध कर दिये। तब क्या उन को समाजियों ने ठीक मान लिया ?। यदि नहीं मान लिया तो हम वेद में शंख चक्रादि चिन्हों के दिखाने को खाज व्यर्थ में क्यों करें ?। हां एक बात हो सकती है कि सब समाजी लोगों की ओर से कोई लिख कर पक्के कागज़ पर अदालत में रजिष्टरी करा देवे कि वेद में शंख चक्रादि चिन्ह धारण की सूचना मिल जावे और जिस पर अमुक २ मध्यस्थ पुरुष भी साक्षी कर देवें तो हम सब आर्य-समाजी अपना मत छोड़ के चक्राङ्कित हो जांये। ऐसा होने पर कितने ही सनातनधर्मी विद्वान् परिश्रम की सफलता देखते हुए वेद से प्रमाण दिखाने का परिश्रम स्वीकार कर लेंगे।

इस पर एक और महाशय बोले कि—सम्पादक वे० प्र० आदि कोई २ कहते हैं कि सायण भाष्य में चक्राङ्कित मत है ही नहीं। इस का उत्तर हम ने यह दिया कि सायण भाष्य में चक्राङ्कित मत नहीं इस से प्रामाणिक नहीं यदि यह मन्तव्य तुम्हारा ठीक है तो लिख दो कि जो २ विषय सायण भाष्य में न होगा वह सभी अप्रामाणिक माना जायगा। और जो कुछ सायण भाष्य में होगा उस सब को हम निर्विवाद ठीक मान लेंगे। यदि कहो कि सायण भाष्य को हम नहीं मानते किन्तु सनातनधर्मी लोग मानते हैं। तब यों ही सही, यही लेख किसी सनातनधर्म के प्रामाणिक ग्रन्थ में दिखा दो कि "सायणभाष्य में जो कुछ लिखा है वही सब माना जायगा और जो बात सायणभाष्य में न होगी उस को कोई सनातनधर्मी नहीं मानेगा।" यदि ऐसा न दिखा सको तो अपनी बेसमझी पर पश्चात्ताप करो। अथवा इसे भी जाने दो पक्के कागज पर यही लिखो कि सायणभाष्य में कहीं भी चक्राङ्कित होना निकले तो हम अपना मत छोड़ के चक्राङ्कित होना कबूल कर लेंगे। ऐसी दशा में सम्भव है कि सायण भाष्य से ही चक्राङ्कित होना कोई विद्वान् सिद्ध कर देवे। प्रयोजन यह कि इन लोगों के कुतर्क इसी प्रकार से खण्डित हो जाते हैं। और विष्णु भगवान् के विग्रह विशेषों के उपासक चक्राङ्कितादि सम्प्रदाय सनातन धर्म के एक २ अंग हैं अपने २ लिये सब अच्छे हैं। केवल मनुष्य की नियत ठीक होनी चाहिये। जिन की नियत बिगड़ी है वे लोग वास्तव में बुरे हैं। यही परम सिद्धान्त है।

तीसरा विषय—"शनैश्चरादि ग्रहों के मन्त्र" इस विषय में शास्त्र बोध में सर्वथा अनभिज्ञ होने से जिन को यह भी खबर नहीं कि स्मृति की परिभाषा क्या है? स्मृति किसे कहतेहैं ? उन को अधिक क्या लिखा वा कहा जाय। क्या किसी अन्धे को भी कोई दर्पण में रूप दिखा सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं। वेद से भिन्न सभी ग्रन्थ मात्र स्मृति पद वाच्य हैं। इसी कारण गृह्यसूत्रोक्त पञ्चमहायज्ञादि कर्मों को विद्वान् लोग स्मार्त्त कर्म, गृह्याग्नि को स्मार्त्ताग्नि कहते मानते हैं। ब्रह्म मीमांसा भाष्य में स्वा० शंकराचार्य जी ने भी स्मृति के उदाहरणों में प्रायः महाभारत के पुराणों के (भगवद्गीता के) उदाहरण दिये हैं। इस से जहां कहीं शनैश्चरादि ग्रह मन्त्रों का विनियोग है वे सभी स्मृति पद्वाच्य हैं। और सनातन धर्मियों में सभी प्रामाणिक हैं। समाजियों ने जैसे मनुस्मृति में होने पर भी अपनी नास्तिक मति होने से श्राद्धादि को नहीं माना वैसे ही ग्रह विनियोगादि भी नहीं मानते फिर मन का मिथ्या दम क्यों भरते हैं ?। अब रहा शनैश्चर ग्रह को नक्षत्र कहने का जो दोष सम्पादक आ० स० पर लगाया है। यह सर्वथा निर्मूल है क्योंकि "शनैश्चरादि नक्षत्र हैं" ऐसा कहीं लिखा ही नहीं गया किन्तु ग्रह नक्षत्र दोनों शब्द वहां लिखे हैं तब न जाने सर्वथा मिथ्या लिखने में इन लोगों को संकोच क्यों नहीं है ?। सो कदाचित् यही बात हो कि हम लोग तो मिथ्या कहने लिखने के ठेकेदार ही हैं तब झूठ लिखने में संकोच क्यों करें ?।

अब चौथा विषय "स्मार्त्त धर्म मीमांसा" है। स्मार्त्त धर्म मीमांसा रूप हम एक बड़ा लेख अपने ब्रा० स० में विस्तार पूर्वक लिख चुके हैं जिस को प्रायः सभी सनातन धर्मियों ने सर्वथा ही सनातन धर्म के अनुकूल समझा और प्रशंसा भी की है। पर तो भी वे० प्र० में ईर्ष्या द्वेष दिखाते हुए कुछ कटाक्ष उस पर भी किये विना द्वेषाग्नि को शान्त न कर सके। दोष यह लगाया है कि "वैष्णवों को कोशते, वेद विरोधी बताते हैं" इत्यादि लिखना भी सर्वथा झूंठ है। क्योंकि हमने वैष्णव सम्प्रदायों की प्रशंसा भी उसी लेख के कई स्थलों में की है। वैष्णव सम्प्रदाय भी सनातन धर्म का एक अङ्ग है। विष्णु भगवान् के त्रिविक्रमादि अवतार वेद से सिद्ध हैं। स्मार्त्त धर्म पुस्तक को वैष्णव विद्वानों ने भी अच्छा न मान कर कई ने खण्डन किया है। श्री पं० वामनाचार्य शास्त्री जी भी मथुरा निवासी एक वैष्णव सम्प्रदायी हैं। उन्हों ने भी स्मार्त्त धर्म पुस्तक का खण्डन किया है। वास्तव में स्मार्त्त धर्म मीमांसा रूप खण्डन मधुसूदन गोस्वामी के लेख का है किन्तु वैष्णव सम्प्रदायों का नहीं है। और वे० प्र० का लेखक इतना भी नहीं समझता कि सनातन धर्म वा स्मार्त्त धर्म क्या है? और सम्प्रदायों का रहस्य क्या है ? तब ऐसे

मूर्ख दुराग्रहियों को क्या कहा जायः ? । जिस को इतना भी होश नहीं कि गरुड़ पुराण में पुरुष को शिष्य करने का लेख है वा स्त्री को ? । अर्थात् स्त्री को शिष्य करने के लिये कोई पद्वाक्य वहां न होने पर भी मिथ्या ही लिख मारा है । इस लिये मिथ्या वादियों का अनुवाद करने में भी दोष देखते हुए हमें उपराम ही करना उचित जान पड़ता है ॥

अब रहा पांचवां जगन्मोहनजी का देवता विषय जिसका एक बड़ा लेख "दैवतमीमांसा" रूप इसी अंक में विद्यमान है । वह विषय अभी चल रहा है । सम्भव है कि इस विषय पर अभी हम और भी युक्ति प्रमाण लिखेंगे ॥

तथापि हम थोड़ा सा लिखते हैं-हमने दैवतमीमांसा लेख में बहुत अंश ऐसा साफ २ लिखा है जिससे कि देवताओं का चेतन होना सम्यक् सिद्ध है । उन अनेक अंशोंपर जगन्मोहनजी ने चूं भी नहीं किया जिससे ज्ञात होता है कि यातो उन अंशों में कोई कुतर्क उठाना सूझा नहीं अथवा उनको ठीक मान लिया हो खैर जो हो । अब यहां हम उन अंशों पर कुछ लिखते हैं जिन पर जगन्मोहन जी ने बीच में ही कुछ विप्रतिपत्ति दिखायी है । उनको उचित तो यह था कि हमारा पूरा२ लेख देख समझकर आवश्यकता होती तो कुछ लिखते तथापि जो कुछ लिखा है उसमें पहिला अंश यह है कि

जगन्मोहन जी-वे० प्र० अं०१२ पृ० २३५ । सामश्रमीजी वेदों को मनुष्यकृत मानते हैं यह सं० ब्रा० स० का विचार है सो ठीक नहीं । इससे उनके लेखान्त में सामश्रमी जी की जो सम्मति है उसे हम कुछ पाठकों के अवलोकनार्थ उदाहृत किये देते हैं कि—

भवति हि व्यक्तिपूर्वकएव कालनिर्णयः, नचात्र क्वापि व्यक्तिनिर्णयः सम्भाव्यते नह्येतत्कृतोऽसौ मन्त्रइति क्वापि लिखितं दृश्यते दृष्टशब्दएव (यदि तुष्यतु दुर्जनइति न्यायेन) कृतवाचकइति चेत्तथाऽपि न व्यक्तिनिर्णयः सुकरः । अग्निना दृष्टइत्यादावग्नीत्यादिसंज्ञानां संज्ञिशून्यत्वेनैव वा प्रायोऽवधार्यत्वात्...तत्त्वतः प्रणेतृव्यक्तिनिर्णयाऽसम्भवादेव मन्त्रकालनिर्णयस्याऽशक्यतैव सम्पद्यते ॥ "युगावसानकाले प्रायः सर्वेष्वेव प्राण्यादिष्ववसन्नेषु केचिच्छिष्टा अवशिष्टा बभूवुः । तैः स्वस्वस्मृत्यनुरूपः साङ्गो वेदः प्रोक्तः स्वस्वान्तेवासिभ्यः"

(शेष आगे)

प्रेरित लेख ॥

दयानंद जी ने सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ३२२ में लिखा है कि पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता बिना भोगे। पृष्ठ ३३८ में बिना भोग के पाप पुण्य की निवृत्ति नहीं होती। उन का यह सिद्धान्त सर्वथा वेदादि सत्शास्त्र तथा समस्त विद्वानों के विरुद्ध है और सदा अशुद्ध। यदि बिना भोगे पाप न छूटें तो मुक्ति कदापि न हो, क्योंकि जीव अनादि है अनादि काल से पाप पुण्य करता चला आता है उन की समाप्ति होना असंभव है। ईश्वर भक्ति, दान, अध्ययनादि शुभ कर्मों के करने से पाप अवश्य नष्ट होते हैं। हमने भ्रमप्रहार पुस्तक में इस विषय को दयानन्द जी ही के लेखों और वेदादि सत्शास्त्रों से स्पष्ट सिद्ध कर दिया है। अब ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय ७ की आठ ऋचा का सूक्त ९७ दिखाते हैं। दयानन्द जी ही के भाष्य से उनकी बनावट और पापों का नाश होना सम्यक् समझाते हैं। तथाहि–

अपनःशोशुचदघमग्नेशुशुग्ध्यारयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥ सुक्षेत्रियासुगातुया वसूयाचयजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥ प्रयद्भन्दिष्ठएषां प्रास्माकासश्चसूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥३॥ प्रयत्ते अग्नेसूरयो जायेमहिप्रतेवयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥ प्रयदग्नेःसहस्वतो विश्वतोयन्तिभानवः। अप नः शोशुचदघम् ॥५॥ त्वंहिविश्वतोमुख विश्वतःपरिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥ द्विषोनोविश्वतोमुखातिनावेवपारय। अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥ सनःसिन्धुमिवनावयातिपर्षास्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥

पहली ऋचा का दयानन्द कृत भाष्य यह है कि पदार्थः (अप) दूरी करणे (नः) अस्माकम् (शोशुचत्) शोशुच्यात् (अघम्) रोगाख्यं पापम् (अग्ने) सभापते (शुशुग्धि) शोधय प्रकाशय (आ) समन्तात् (रयिम्) धनम् (अप) दूरी करणे (नः) अस्माकम् (शोशुचत्) दूरे कुर्यात् (अघम्) मनोवाक्छरीरजन्यं पापम् ॥ १ ॥ अन्वयः–हे अग्ने भवान् नोऽस्माकमघमपशोशुचत्पुनः पुनर्दूरीकुर्यात् रयिमाशुशुग्धि। नोऽस्माकमघमपशोशुचत् ॥ १ ॥

यहां पदार्थ में प्रथम (अघम्) इसके आगे रोगालस्यं स्वामी जी ने अपनी ओर से बढ़ाया है किन्तु (पापम्) इतना ही यथार्थ है क्योंकि अघ शब्द का अर्थ पाप ही प्रकट है रोगालस्य पाप नहीं किन्तु पाप का फल है यदि रोगालस्य को ही पाप मानो तो भी हमारी कुछ हानि नहीं पाप का नष्ट होना सिद्ध ही है फिर (अग्ने) पद की व्याख्या सभापते सर्वथा अशुद्ध है। यदि शुद्ध कहो तो निरुक्त निघंटु में प्रमाण दिखाइये। अग्नि शब्द का अर्थ देवता वा ईश्वर ही उचित है ॥

अंत में (अघम्) इस का अर्थ (मनोवाक्छरीरजन्यं पापम्) स्वामीजी ही ने स्पष्ट लिखा है अर्थात् मन वचन शरीर से उत्पन्न हुए पाप को दूर कीजिये। पदार्थ की भाषा में उन का यह लेख कि (अघम्) मन वचन और शरीर से उत्पन्न हुए पाप की शुद्धि के अर्थ दंड दीजिये, उन्हीं के पूर्वोक्त संस्कृत लेख से विरुद्ध है और सर्वथा अशुद्ध। वस्तुतः आठों ऋचाओं के अंत में (अपनः शोशुचदघम्) यह पाठ स्पष्ट विद्यमान है जिसका अर्थ (हमारे पाप को दूर कीजिये) यही यथार्थ है अन्यथा बनावट करना पक्षपात वा अज्ञान है। दूसरी तीसरी और चौथी ऋचा के संस्कृत पदार्थ में स्वामी जी ने (अप नः) इति पूर्ववत् यह लेख किया है अर्थात् जैसा पहिली ऋचा के संस्कृत पदार्थ में (अघम्–मनोवाक्छरीरजन्यं पापम्) यह व्याख्या की है वही यहां जानना परन्तु पांचवीं ऋचा के संस्कृत पदार्थ में (अघम्) दारिद्र्यम्, लिख कर फिर छठी सातवीं तथा आठवीं ऋचा के संस्कृत पदार्थ में (अप इति पूर्ववत्) यह लिखा है सो अशुद्ध है क्योंकि दरिद्र पाप नहीं किन्तु पाप का फल है। इसी प्रकार दूसरी ऋचा के भाषा पदार्थ में (अघम्) दुष्ट व्यसन को दूर कीजिये, तीसरी ऋचा के भाषा पदार्थ में (अघम्) शत्रुजन्य दुःखस्वरूप पाप को, चौथी ऋचा के भाषा पदार्थ में (अघम्) विरोध रूप पाप को, पांचवीं ऋचा के भाषा पदार्थ में (अघम्) दरिद्रपन को, छठी ऋचा के भाषा पदार्थ में (अघम्) दुष्ट स्वभाव संग रूप पाप को, सातवीं ऋचा के भाषा पदार्थ में (अघम्) शत्रुओं से उत्पन्न हुए दुःख को, और आठवीं ऋचा के भाषा पदार्थ में (अघम्) अशान्ति और आलस्य को दूर कीजिये इत्यादि बनावट की है करो। हमारी कुछ हानि नहीं, पाप की निवृत्ति मानी है। अतएव उन का वह सिद्धान्त कि विना भोगे पाप की निवृत्ति कभी नहीं होती, सर्वथा वेद विरुद्ध और महा अशुद्ध है। ईश्वरभक्ति, दान, वेदाध्ययनादि शुभ कर्मों के करने से पाप अवश्य

नष्ट होते हैं। सज्जन लोग सत्यासत्य का यथावत् निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें। पक्षपात और हठ दुराग्रह से धर्मको ग्लानि है और लोक परलोक में हानि ॥ इत्यलम् ॥

जगन्नाथदास मुरादाबाद।

और देखो

कद्रुद्रायप्रचेतसे मीढुष्टमायतव्यसे। वोचेमशन्तमंहृदे ॥१॥

पदार्थः—हम लोग कवि उत्तम ज्ञान युक्त अतिशय करके सेवन करने या अत्यन्त वृद्ध हृदय में रहने वाले परमेश्वर जीव वा प्राणवायु के लिये अत्यन्त सुखरूप वेद का अच्छे प्रकार उपदेश करें॥ १ ॥ पाठकगण! दयानन्द जी ने अपने ऋग्वेद भाष्य के पृष्ठ ८१६ में पूर्वोक्त मन्त्र की यह उक्त व्याख्या की है। उन्हों ने निरुक्त शतपथ तथा पूर्वाचार्यों के विरुद्ध अपनी नवीन भाष्य रचना करके जगत् को भ्रमजाल में डाल ही दिया। उक्त लेख में परमेश्वर को भी अच्छे प्रकार वेद का उपदेश करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं। धन्य! न जाने उन की वह अभिलाषा पूर्ण हुई वा अपूर्ण रही, सज्जन लोग विचार करें कि उन का उक्त लेख कैसा अनर्थ है। परमेश्वर ने ब्रह्मादि को वेद का उपदेश किया है, दयानन्द जी परमेश्वर को भी वेद का उपदेश करने की डींग मारते थे। धन्य!

पं० आत्माराम पाईग्राम ज़िला करनाल निवासी

(श्राद्ध कृत्यमीमांसा)

एकं विवेकं नुमः।

(धर्म्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणंपरमंश्रुतिः)

सात्त्विक वृन्द! पूर्वकाल में हमारे इस भारत वर्ष में यह शैली हुआ करती थी, कि जब किसी सनातनधर्मावलम्बी आर्य्य सन्तान को कभी किसी मार्गगत नास्तिक की अकस्मात् कुत्सित युक्ति से स्वकीय कर्त्तव्य अकर्त्तव्य में चित्त भ्रम हो जाता था तो वह एक वार ही अपने अन्तःकरणरूपी दीवार में उसे अङ्कित नहीं कर देता था, किन्तु धर्म और अधर्म को अपनी सामर्थ्य से बाहर मानके शिष्ट परम्परा पर आरूढ़ होकर विद्वानों से निवारण की कोशिश का रास्ता देखता था। यह उसके चित्त में पूर्ण विश्वास होता था कि—

येनास्यपितरोयाता येनयाताःपितामहाः।

तेनयायात्सतांमार्गं तेनगच्छन्नरिष्यते ॥

मनु० अ०४ श्लो० १७८ इस मानव वचन पर निर्भर कर अपने पिता पितामह आदि सेवित सत्पथ को ही कल्याणकारी जान निःसन्देह वैदिक धर्म के करने में ही तत्पर रहते थे। इस प्राचीन शैली का ऐसा अभाव हुआ है कि शिष्टाचार का अनुसरण तो कोसों दूर रहा, पर जिन कर्त्तव्यों का शास्त्रों में स्पष्टतया वर्णन है, उन पर भी आधुनिक युवक लोग विश्वास नहीं करते। किन्तु जो चित्त में आता है उन्हें अपने पूर्वजों और वृद्धों को कलंकित करते तनक भी नहीं लजाते हैं। बहुत क्या कहें? पितृ कर्म को शास्त्र विरुद्ध बतला, अपने वृद्धों को मूर्खों का दादा बना अलग होकर मन माने, डींग मारते हैं। मूर्खों को समझाने के लिये ब्रह्मा जी भी सामर्थ्य नहीं रखते हैं। इन विचार शीलों के लिये हम कुछ प्रयत्न करते हैं। प्रथम-[श्राद्ध किस कृत्य का नाम है और कैसे पहुंचता है, और कौन पहुंचानेवाला है,] इन तीन विषयों का क्रमशः विचार करते हैं।

अथैतन्मनुः श्राद्धशब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिःश्रेयसार्थं, तत्र पितरो देवता, ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे, मासि मासि कार्यमपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयान् ॥ श्राद्धमिति शब्दो वाचको यस्य तत्कर्म श्राद्धशब्दम् ॥ इति मदनपारिजातः ॥

अर्थात् प्रजा के कल्याण के वास्ते वेदार्थ ज्ञाता मनु जी ने एक ऐसा कर्म उपदेश किया है जिस का नाम श्राद्ध है, तहां जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवता पूजनीय होते हैं, और आहवनीय अग्नि उन की तृप्ति के लिये होम का आधार होता है। उसी प्रकार इस पितृयज्ञ में पूजनीय देवता पितर हैं। और उन की तृप्ति के लिये होमाधार अग्नि की जगह ब्राह्मणों का मुख है। यह कर्म मास २ में करना चाहिये, परन्तु कृष्णपक्ष का अपराह्णकाल इस क्रिया के अनुष्ठान में श्रेष्ठ है। यह सब आगे स्पष्ट होगा।

इस आपस्तम्बीय मनुसंमत वचन से मृतक पितरों के निःश्रेयस के उद्देश से पितृ देवताओं के यजनार्थ जो होम पिण्डदानादि ब्राह्मण भोजन रूप सत् क्रिया है वह श्राद्ध पद का वाच्य जानना। यद्यपि श्रद्धायुक्त यावत्कर्म का ही श्राद्ध शब्द से बोध होता है। तथापि (अकालमृत्यु) इस पद का अर्थ यह नहीं है कि बिना कालके मरजाना। क्योंकि ऐसा मानने से (नाकाले म्रियते जन्तुः प्राप्ते काले न जीवति) इत्यादि वचन जो बिना काल के मरने का

निषेध करते हैं। वह असंगत हो जावेंगे, किन्तु पशु पक्षी मकर मृग शृङ्गी, दंष्ट्री अग्नि,जल, आदि जन्य जो मरण है उसका नाम अकालमृत्यु है क्योंकि इन सब मरणों में मरण काल के समय जो स्नान भूमिशयन दीपदानादि सामग्री होती है वह प्राणी को नहीं मिलती है। तथा श्रद्धा से किये हुए कर्म मात्र का नाम श्राद्ध नहीं है, किन्तु मृत पितृ कृत्य का ही है। इस अकाल मृत्यु पदकी म निन्द श्राद्ध शब्दको पारिभाषिक मान कर शास्त्रीय पितृ कृत्य ही श्राद्ध शब्द का अर्थ जानना, इसी से ही कोशकारों ने (श्राद्धं तत्कर्म शास्त्रतः) यह कहा है। ब्रह्म पुराण में भी–

देशेकालेचपात्रेच श्रद्धयाविधिनाचयत्।
पितृनुद्दिश्यविप्रेभ्यो दत्तंश्राद्धमुदाहृतम् ॥

इस से शास्त्रीय पितृ कृत्य को ही श्राद्ध कहा है। अर्थात् जैसे परमात्मा की सृष्टि में देवलोक आदि अन्यलोक हैं और उन के अधिष्ठाता इन्द्रादि देव हैं तथा (कर्मणा पितृलोकः। बृहदारण्यकोपनि०) (दक्षिणाप्रवणो वै पितृलोकः "शतपथ" १३। ८। ४) इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणों से एक पितृ लोक भी स्वतन्त्र लोक है जिस के अधिष्ठाता अर्यमा तथा अग्निष्वात्त आदि पितृ देव हैं, ये जो अर्यमादि पितृदेव हैं वेही इस श्राद्ध कर्म के पूजनीय देवता हैं, इन्हीं को वेदके आनन्द मीमांसा प्रकरण में देवगंधर्वों से शत गुणित अधिक आनन्द का भागी कहा गया है। (शेष आगे)

द०:—कविराज मदनेश्वर शर्म्मा—डेरास्माईलखान

हिन्दुस्तान में होली का खेल।

दुनियां में यदि शत्रु और मित्रों का एक हाव, भाव में मिलाने की कोई चीज है तो वह होली, जिन को एक दिन जूतों की लड़ा लड़ और लाठियों की खटाखट करते देखा; उन्हें भी होली में एक साथ गाते देखा। जिन का पुश्तैनी वैर चला आता था; उन को भी होली में हाथ मिलाते देखा, जिन को तीखी और कड़ुई मजाकें सुना रहे हैं, उन्हें भी होली में हंसते हुए देखा। जो जिन की निगाह सामने होना गुनाह समझ रहे थे; उन को भी एक ही चौकी पर ठंढाई के गिलास ढकोलते हुये देखा। जो कभी किसी की रूखी सुनने का स्वप्न में भी साहस नहीं रखते थे; उन को भी जी उबालने वाली दिल्लगी सुनकर मधुर मुसकी छोड़ते हुये देखा। बड़े बड़े बलो

पुरुषों के शिर पर भी लड़कों की धूल भरी झोली वेधड़क पड़ते देखा, अहाहा! क्या न देखा ? जो देखा सो सब इस कराल काल के प्रतिकूल सत्ययुग का सा तमासा ही देखा।

पर यह सब तो होली के मानने वालों ही ने देखा। जो लोग होली के विरोधी हैं उन के मत में होली मनाना कोई चीज नहीं । होली में गाना बजाना, अबीर गुलाल उड़ाना, अतर सुगन्ध लगाना, एवं रंग गुलाल छोड़ना उन के लिये वाहियात बात है। प्राणी मात्र का हर्षोल्लास उन लोगों के लिये टेढ़ी खीर है, उन मनुष्य जाति के बैरियों के लिये हमारी होली खाली नहीं रहना चाहती, होली कहती है कि आनन्द मनाना मनुष्यों के पुरुषार्थ का प्रमाण है। जीते रहेंगे तो साल भर बाद फिर होली खेलेंगे। इस आशासे मनुष्यों का कराल दुष्काल कटता है। होली के गाने बजाने में शत्रु, मित्र, छोटे, बड़े, उच्च, नीच सब एकताके लाल और गुलाबी रंग में रंजित होते हैं, उस बाहरी स्वरूप का एक रंगा होना एकात्मता की साक्षी के लिये है। वैसे ही परस्पर सुगन्ध लगाना आपस की सच्ची प्रीति का पुरस्कार है । संवत् के सुखमय बनाने के लिये उस के पूर्व में मंगलाचरण करना आर्य्यों की आर्ष और वैदिक रीति का ही नमूना है इस में भला किसी की रंजिस की क्या बाइस है ?।

हमारी होली का शुभ अवसर तो जगत् में एकता अविरोध स्थापित करने का अद्वितीय प्रयत्न प्रतीत होता है। फिर यह तो ठहरा बसन्तोत्सव, बसन्त तो आप ही आप गाने बजाने और विलास का स्वतन्त्र सामान है। इस के लिये किसी का यह पूछना कैसा ? कि होली खेलने के लिये वेद और स्मृतियों में वचन कहां है ?। जो लोग प्रश्न उठाते हैं कि होली का सरस गान किस शास्त्र का उद्देश्य है? वे भी बसन्त के विकाश में चित्त की चाञ्चल्य से बचे नहीं रहते। अरे ! देश काल के अनभिज्ञो ! स्वतः सिद्ध विधि के लिये शास्त्रीय प्रमाण की क्या जरूरत है ? बसन्त द्वारा विकृत किये हुये विशेषतः कलिकाल वालों के अधिकांश व्यथित हुए चित्त को स्वच्छता और निर्मलता के निर्झर वारि से सींचने के लिये आज कौन सी तदबीर बताते हैं? पृथिवी के सम्पूर्ण मनुष्यों का यह सम्मत है कि क्रोध की शान्ति कुछ बक झक देने से हो जाती है। कामियों की सकामिता हृद्गत भावों को शान्त करने से निश्चय हलकी पड़ती

है। महाबुद्धियों के आलङ्कारिक ग्रन्थों के अवलोकन से जान पड़ता है कि परले सिरे के कामी यक्ष ने मेघों से अपनी प्रिया को सन्देशा कहला २ अपनी मर्म पीड़ा घटाई थी। किन्तु यह सब सत्य होने पर भी एक सानुलय है। वह यही कि रसीला गान बहुधा कामोद्दीपिता का मसाला माना जाता है, मानिनी स्त्रियों और नपुंसक पुरुषों के लिये वैसे बचनों के सुनाने का उद्देश्य साबित करता है कि, कामोद्दीपक होने से फगुए का गान त्याज्य है, पर नहीं, कामशून्य अथवा जर्जरित कामियों के लिये कामोद्दीपक वचन अमर कर सक्ते हैं। किन्तु काम पूर्ण हृदयों के लिये सरस बचनों का निकलना उनकके चित्त की स्वास्थ्य का हेतु ही हो सक्ता है। अत एव सर्वदा ही अश्लील सम्भाषण की विरोधिनी बुद्धिमती गवर्नमेन्ट का आईन भी बसन्त पीड़ितों के लिये पीड़ाजनक नहीं होता।

हो क्यों कर ? क्या हमारी न्याय प्रिया गवर्नमेन्ट इतनी बारीक बात नहीं समझती, उस के नेत्र है, कर्ण है, नासिका है, अनुभव है। वह देखती है कि इस समय के हिन्दुस्तान की छटा परम रम्य मर्म्मोद्दीपक है। कोयल सदृश पक्षियों कि घरबी दुर्लभ शब्द को वह आज यहां सुन रही है त्यों ही नाक फाड़ने वाले आम आदि प्रफुल्लित वृक्षों की बल्लरी मानो भारत के भूपति के लिये अनुपम शोभा लेकर कृतज्ञता दिखाने के लिये खड़ी हुई हैं, यही सब देखकर हमारे पुराने राज प्रतिनिधि गण होली के रसीले गानकी आवश्यकता स्वीकार कर गये हैं। होली में वैसे मन भावन गान का सभी सामान भराहुवा रहने पर भी सरस संगीतों के विरोधियों के लिये और क्या समाधान होना चाहिये ? सीधी कोई सी सुविधा न रहने के कारण इस देश के लोग प्रायः अमेरिकादि भिन्न स्वदेशों के समाचारों और सामाजिक विचारों से जानकार नहीं हुवा करते; पर ब्रिटिश वासियों का यहां राजत्व सम्बन्ध रहने से कभी२ वहां के जातीय समाचार भी मिल जाते हैं। तब यह जाना गया है कि ग्रेट ब्रिटन (अंग्रेजों के खास देश) में भी बसन्तोत्सव की सुहावनी प्रथा प्रचलित है। जिस की सरसता हिन्दुस्तान की होली से किसी कदर कम नहीं है। चाहिये ही। देश, काल, पात्र के पूर्ण अभिज्ञ बहुदर्शी भला निर्भय होकर बसन्त क्यों न मनावें ? पर हा ! जगत् की हित कामना से चलाई हुई सुरीतियों में सर्वदा ही बुराई की कल्पना याद करने वालों द्वारा "विलायती फगुआ" भी निर्दोष क्योंकर समझा जाता ? शिष्टाचार को चौपट करने वाली कल्पित सभ्यता की बूसे भरे बाबुओं में एक

विलायती फाग की आलोचना करते हुये लिखते हैं कि "अभी तक भी बृटिश वासी वहां के पुराने वासिन्दों की बसन्तोत्सव सम्बन्धी गन्दी रीति को छोड़ नहीं सके, इस विरंचि की विचित्र रचना में बहुतों के दुःख का हेतु भी कितनों ही के आनन्द का कारण होता है "विलायती चिट्ठी" के लेखक का अन्दाजा हुआ अन्याय हमारे लिये न्याय युक्त काम है। वसन्त के समयोचित उत्सव का सब देशों में अधिकतर प्रचरित होना मनुष्यों की सजीवता का ज्वलन्त प्रमाण बन सकता है। मनुष्य जाति में उदासीनता तथा निकम्मापन बढ़ाने के लिये बसन्तोत्सवादि रोकने के समाजियों से हम अपने इस आनन्द कानन हिन्दुस्तान पर कृपा रखने ही की प्रार्थना करते हैं।

इस समय होली के मिस में और भी जो एक सन्देह उपस्थित है, उसका निवारण भी आज हो जाना चाहिये अर्थात् इस देश में होली के बीच में कुछ ऐसी बेढंगी गालियों की प्रथा प्रचलित है कि आजकल की विद्वन्मण्डली उन से खिन्न गई है और अनुचित गालियों के पक्षपाती ध्वान शायद हमारे अभिप्राय से गालियों का समर्थन समझेंगे किन्तु सो नहीं, एकबार हो शिष्टप्रथा के प्रतिकूल और अटियारिलियां से भी बुरी गालियां हम हिन्दुओं में कभी न रहनी चाहिये। एकबार "हिन्दी बंगबासी" में लिखा गया था कि होली तथा शादी में गालियां अभिप्राय विशेष से हिन्दुओं में चली थीं। "भारत-मित्र" में बूढ़े के गणेशदत्त व्यासने गालियों की प्रथा वर्णने और उपदेश देनेवालों को बुरा भला कहा था, पर इस से प्रकृत विषय का निर्णय क्या हुआ ? जो किसी निमित्त-विशेष से हिन्दुओं में गालियां प्रचलित हैं; उन के बन्द हो जाने से हिन्दू-समाज में कौन से दोष आवेंगे ? और होली शादी की बेतरह गालियां बनी रहने से हिन्दुओं की विदेशियों में कैसी बेइज्जती फैल रही है ? प्रयोजनीय गालियां बनी रह कर भी भारतवासियों की गाली बकने की बुरी पैंड़ किस तरह छूट सकती है ? यदि कोई शुद्ध हृदयी, देशहितैषी, विद्वान् इन बातों का एकबार भी प्रकाश कर देता तो सब विवाद समाप्त हो जाता।

होली और शादी की गाली से मूल, प्रधान, निश्चित और असली उद्देश्य यह है कि-समयानुसार प्राकृतिक आनन्द उत्पन्न करना, कूट, मजाक और दिल्लगी से संस्कृत और अंगरेजी के उत्तम २ ग्रन्थ खाली नहीं हैं, उन

का हेतु सिर्फ आनन्दोत्पादन है। इसी से भारतवर्ष में भारतवर्ष के पुराण पुरुषों ने समयानुसार दिल्लगी का रहना सादर स्वीकार किया और कोई शास्त्रीय कारण इन गालियों का नहीं है। इस से हमारा यह मतलब है कि जिस मूल प्रयोजन के लिये प्राचीनों ने इस प्रथा को चलाया था वैसी ही बारीकी से उन का प्रचार जरूर रहना चाहिये। हिन्दी के प्रशस्त कवि तुलसीदास और बिहारी भी ऐसा ही अनुमान कर गये हैं और अधिक भद्दी महा असभ्यों की फजूल गालियां (जो कि अधाधुन्धी से चल पड़ीं) हिन्दूसमाज में न रहने से इस समाज का बड़ा कलङ्क मिट सकता है। होली कभी नहीं चाहती कि-एक अविचारित प्रथा प्रवृत्त रहने से ऐसे उत्तम सुअवसर को कोई दूष्य दृष्टि से देखे उस का सर्वदा ही अभीष्ट है कि-सभी आनन्दोन्मत्त हो कर मेरा सुदिन मनावें।

होलिकोत्सवाभिलाषी पं० शिवचन्द्र शास्त्री,
जमालपुर-मैमनसिंह, (बङ्गाल)

होली पर सम्पादकीय सम्मति-

सभ्यता धारण करनी चाहिये, विद्यादि शुभगुण सभी को सीखने चाहिये ईश्वर देवतादि की भक्ति उपासना में चित्त लगाना, धर्मानुष्ठान में तत्पर होना, किसी प्राणी को दुःख देने की चेष्टा न करना, प्रिय सत्य बोलना, प्रसन्न सन्तुष्ट रहना, उत्सव मनाना इत्यादि सर्व सम्मत विधि वाक्य हैं। इन में सब शास्त्रों तथा सब मतवालों की एकता है। इत्यादि विधि वाक्य अपने अंश में सदा ऐसे ही चरितार्थ रहते हैं कभी किसी भी हालत में ऐसे विधि वाक्य निरर्थक नहीं होते। परन्तु संसार में सभ्यतादि शुभ गुण ग्राही सब मनुष्य कभी नहीं होते हैं किन्तु सभी प्रकार के मनुष्य रहा करते हैं चाहें यों कहो कि भलाई बुराई सब के घाल मेल में चलनेवाले प्रवाह का नाम ही संसार है। भूख, प्यास, अन्धकारादि को निवृत्त करने के लिये हम सभी अनादि काल से उपाय किया ही करते हैं करते ही चले आते और करते ही रहेंगे परन्तु भूख प्यास अन्धकारादि की जगत् से सर्वथा निवृत्ति न अब तक हुई न आगे कभी होगी। तथापि निवृत्ति का उद्योग करना ही चाहिये क्योंकि सफलता भी होती ही जाती है। हमारा उद्योग भी केवल इतने ही उद्देश को लेकर चलता और चल सकता है कि हम परिमित स्थानों से परिमित काल तक भूख प्यास अन्धकारादि को निवृत्त कर सकें सो हमारे उ-

द्योगानुकूल फल भी होता जा रहा है। इसी सफलता में (भूंख आदि की निवृत्ति करनी चाहिये) इत्यादि विधि वाक्य भी सफल तथा चरितार्थ होते जाते हैं। यदि हम इस उद्देश को लेकर उद्योग करें कि अपरिमित स्थानों वा प्राणियों से अपरिमित काल के लिये भूंख प्यास अन्धकारादि को निवृत्त कर देवें तो यह हमारी बे समझी होगी क्योंकि वैसा होना असम्भव है। इसी के अनुसार सब शास्त्रों और लोक के सब विधि वाक्यों की संगति लगाना ही समझदार बुद्धिमानों का काम है।

प्रकृत में इसी उक्तरीति को यों लगाना चाहिये कि उत्सव मानना एक कर्त्तव्य विधि है उस में अच्छे२ उत्सव के उद्बोधक अनेक प्रकार के रंग विरंगे वस्त्र धारण, मिलना, गाना, बजाना आदि काम सभ्यतादि के साथ होने चाहिये यह तो विधि वाक्य है। परन्तु ग्रामीण, अशिक्षित, कामी, विषयी, मूर्ख, लम्पट आदि मनुष्य सभ्यतादि से उत्सवादि को नहीं कर पाते यह सिद्धानुवाद है। यदि उपदेश और शिक्षा का प्रचार किया जाने पर भी अशिक्षित लोग सभ्यतादि से उत्सवादि न कर सकें तो भी सज्जन लोग अवश्य सभ्यतादि की रक्षा करते हुए ही उत्सव मनावें। उत्सव अनेक प्रकार के हैं उन में होली दिवाली ये दो उत्सव प्राकृतिक नियमों से ही सबसे प्रधान वा बड़े प्रतीत होते हैं क्योंकि कार्त्तिक में ज्वार बाजरा धान आदि की फसल तयार होने से ईश्वरीय नियमानुसार भूमण्डल भर उत्सव से शोभमान होता और गेंहूं जौ आदि से फाल्गुन में भूमि शोभमान होती है। इन दोनों में भी वसन्त बड़ा उत्सव इस लिये है कि पौष महिने से उत्तरायण का आरम्भ होकर सूर्य नारायण के द्वारा पार्थिव पदार्थों पर आने वाला सत्त्व गुणी तेज ठीक मध्य कोटि में आता है वा अपनी ठीक युवावस्था पर हो जाता है। वेदादि शास्त्र तथा सायंस विद्या के नियमानुसार ब्राह्मण वर्ण भूमि पर अन्य सब से विशेष सत्त्व गुणी है। वृक्षों में ढांक और विल्व (वेल) आदि अन्य वृक्षों की अपेक्षा अधिक सत्त्व गुणी हैं। उस सत्त्व को जगाने वाला जब बाहरी वसन्त ऋतु सम्बन्धी सत्त्व गुण बढ़ता है तभी वे पलाश (ढांक) आदि नये २ रंग विरंगे फल फूल और पत्तों से शोभमान हुए अपने भीतरी आनन्दोत्सव को स्वाभाविक सृष्टि क्रम से ही प्रकाशित करते हैं। इसी सत्त्व गुण की उद्बोधक शक्ति का सृष्टि क्रम से स्वाभाविक प्रादुर्भाव देखते हुए वेदादि शास्त्रों में लिखा गया है कि—

वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत। वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत।

वसन्त में ब्राह्मण अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीयादि) को विधि पूर्वक स्थापित करे। वसन्त में ब्राह्मण का यज्ञोपवीत होना चाहिये। इसी उक्त अभिप्राय से फाल्गुन में अश्वमेधयज्ञ का विधान है जिस की पूर्त्ति फाल्गुन की पौर्णमासी को कही है। इसी विचार से चातुर्मास्ययागों का प्रारम्भ (वैश्वदेवपर्व) भी फाल्गुनी पौर्णमासी को होता है। और यवाग्रयणेष्टि (जौकी नवान्नेष्टि) का भी यही समय है। इसी कारण प्रायः सभी सनातन धर्मी लोग होली पर भूंज २ कर नये जौ चढ़ाते हैं।

सत्त्वगुण की वृत्ति सुख, रजो गुण की दुःख और तमोगुण की वृत्ति मोह हैं (सत्त्वं सुखे सञ्जयति) सत्त्वगुण प्राणियों को सुख में लगाता है यह भगवद् गीतादि शास्त्र तथा युक्ति से भी सिद्ध है। इसी कारण सृष्टि क्रम से बढ़ा हुआ वसन्त का उत्सव मनुष्यों को सुख तथा आनन्द में तत्पर करता है सो ठीक सृष्टि क्रम के अनुकूल है। रंग विरंगे होना, गाना, बजाना, उत्तम २ पदार्थों का भोजन, उत्तम २ वस्त्रादि का धारण करना, ये सब वसन्तोत्सव के आनन्द समुद्र की लहरों वा तरंगों को उछालने वाले हैं।

अब रही खेल तमाशे की बात सो वास्तव में तो सभी संसार खेल तमासा रूप ही है। इस संसार के खेलों में भिन्न २ प्रकार के खेल सब लोग खेल रहे हैं। ज्ञानी विरक्त लोगों को सभी काम खेल तमाशारूप ही दीखते हैं। कामी लोग कामदेव के रंग में रंगेहुये उसी के खेल में लगे हैं। लोभ के रंग में प्रायः सभी रंगे हुए धनैश्वर्य के खेल में लगे हैं। देशहितैषी लोग स्वदेशी व्यापारादि रंग में खेलते हैं। कोई लोग एक खेल को छोड़ के दूसरे खेल में लगजाते हैं। जब सभी खेल है तो सज्जनों को स्वदेशहित के लिये एक नये ढंग का खेल शोच विचार के निकालना चाहिये जिस का परिणाम देशोन्नति हो तभी उत्तम कक्षा की ठीक होली होगी।

निम्न लिखित तीन शिखरिणी श्लोकों में आर्यसमाजियों का सर्वतो भ्रष्ट होना दिखाया है। कि इन २ कारणों से समाजी लोग हिन्दु वा मुसलमान दोनों हो नहीं कहे जा सकते॥

न मान्यः काशीशो विभुरनयमान्यो न जगता,[1]
मधीशः कागङ्गा विलुलिततरङ्गा द्युपतयः॥
न वा किञ्चिन्माहम्मदमुखमतं किं न निहतं,

समाजस्थो धूर्त्तः शिवशिव न हिन्दुर्न यवनः ॥१॥
न मक्का नो मान्या भगवदधिवासा मधुपुरी,
न पीराणां दासो न च गुरुमुखान्मन्त्रमुचितम् ॥
करोत्यूरी दूरीकृत इति सदाचार उभयोः,
समाजस्थो धूर्त्तः शिवशिव न हिन्दुर्न यवनः ॥ २ ॥
न साधूनां सेवां कलयति फकीरान्न यजते, ॥
न यात्यद्धा देवालयमपि तथाल्लालयमपि ॥
न कौरानं वाक्यं न च निगमसम्बन्धि मनुते, ॥
समाजस्थोधूर्त्तः शिवशिव न हिन्दुर्न यवनः ॥ ३ ॥

राजाश्रितवैद्यरत्न प० शिववर्णराम शर्मा
स्टेट् कुडवार जि० सुलतानपुर

श्री भैरवो भूतिदो भूयात् ॥

अथ श्री भैरवाष्टकमारभ्यते ।

*मित्र ! शृणु प्रिय ! सातवनौकालोललामविभूषितमूर्त्तिः॥
खस्यपथाद्युदलङ्घयदब्धिं चित्रमतःप्रमदंचतनोतु ॥१॥
श्रीहेरम्बंहृतनिजजनैनःकदम्बंसदम्बम् ।
नत्वाचश्रीगुरुभगवतीलालसन्तंलसन्तम् ॥
सद्भावस्याऽखिलकविमणेर्माधवस्याऽऽत्मजोहं
नित्यानन्दोऽरमिहविदधे भैरवस्तोत्रमेतत् ॥ २ ॥
करोल्लसत्कपालकं स्वभक्तलोकपालकम् ॥
सदास्वशत्रुभैरवंनमाम्यऽहन्तु भैरवम् ॥ १ ॥
कृतस्ववैरिदाहनं सुसारमेयवाहनम् ॥
महापवित्रदेहकं सुभैरवंभजेऽहकम् ॥ २ ॥
शुभंसरोजलोचनं स्वभक्तदुःखमोचनम् ॥
स्मरामिमोदकारिणं सुभैरवंविहारिणम् ॥ ३ ॥
शिवोपकण्ठवर्त्तिनंतदन्तिकेचनर्त्तिनम् ॥

भजामिभव्यवृद्धिदं सुभैरवंसमृद्धिदम् ॥ ४ ॥
मरुस्थसद्वटावलि त्रयोदशी स त्सवम् ॥
स्तवीमिभैरवंप्रिय-स्वघस्रसन्मरुत्सवम् ॥ ५ ॥
विशीर्णवैरिविग्रहे करोतियोहि विग्रहे ॥
स्वकैश्चसुप्रभैरवं नुवामितंचभैरवम् ॥ ६ ॥
विभाति यो हि सुप्रजा उपात्तमङ्गलव्रजाः ॥
निजोद्यमैःशुभैरवन् नुतोऽस्मितंचभैरवम् ॥ ७ ॥
सुकुण्डलेद्धकर्णकं महेशकीर्त्तिवर्णकम् ॥
शिवाऽऽननेन्दुकैरवं सदाभणामिभैरवम् ॥ ८ ॥
दाधीचश्रीमाधवप्राज्ञसूनु नित्यानंन्दाऽऽख्यप्रणीतंसुगेयम् ॥
आयुःश्रीदं त्वऽष्टकंभैरवस्याधीतेसस्यादिष्टभाक्चेतिमुक्तिम् ॥

जोधपुरवासी नित्यानन्दशर्मा
शास्त्रिक्लास–ओरियण्टल कालेज लाहौर

* हे मित्र ! श्रीरामदत्त ! (इत्यासन्नस्थितश्रीङ्कारिंश्रजभैरस्थं प्रत्युक्तिः) शृणु, सीतामार्गप्रदर्शिसंपातिवचनात् प्रियसातः प्रियसुखः (शर्मसातसुखानिचे) त्यमरकोषे दन्त्यादेरपि सत्त्वात्, तादृशश्चासौ वनौकाः कपिर्हनुमानिति यावत्, सलीलललामेन तरलपुच्छेन "ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतु" ष्वित्यमरः। विभूषिताऽलंकृता मूर्त्तिस्तनुर्यस्य तथोक्तः सन् खस्याऽऽकाशस्य मार्गेण समुद्रमुल्लङ्घयामासेति विस्तृततराब्धिलङ्घनेन चित्रमद्भुतं हर्षं च तनोतु॥अपि च लोलल‌लामेन तरलकेतुनाऽलंकृतमूर्त्तिः सा नौका तरिस्तत्र (सा-तव) इतिच्छेद्यम् । आकाशमार्गेण नतु जलमार्गेण समुद्रं अतिक्रान्तवानिति तव ते चित्रं मुदं च तनोतु। इत्येतेनपरीक्षाऽब्ध्युत्तारणेनौरूपो हनुमान् उपरि मार्गेणैव नतुनौपरिश्रमेणेति भाव आवामुदलङ्घयदुदतारयदेवेति।अन्तर्भाविणयर्थोऽत्रार्थे लङ्घिर्ज्ञेयः,अतस्तादृशपरिश्रमाऽभावादुत्तीर्णता। फलसिद्धत्वेन चित्रं प्रमदं च तनोतु"।इति व्यज्यते॥ दोधकं वृत्तम्॥ मरुस्थलवर्त्ती यो वटावलीति ग्रामो वटानां,आवलिः पङ्क्तिर्यत्र स तथोक्तोबडुलीति प्रथितस्तन्मेलकोत्सवख्याता या त्रयोदशी भाद्रसितत्रयोदशी तस्यां सन् विद्यमान उत्सवो यस्येति तमितिपूर्वार्द्धार्थः।प्रियः प्रीतिदः स्वघस्रे उक्तत्रयोदशीदिनेसन् विद्यमानो मरुतां सुराणां सवो यज्ञो यस्येति तमित्युत्तरार्द्धार्थ।एतेन तद्दिने यात्रागतैर्हवनान्यपि क्रियन्तइति व्यक्तम् ॥

पुलिस का कर ।

जहां न्याय तहं धर्म है, धर्म तहां आनन्द ।
नीति रहित अधरम बसत, बढ़त महा दुःख द्वन्द ॥

हाय हाय "अंधेर नगरी बेबूझ राजा" की मसल अब तक हम कानों ही से सुना करते थे पर आज कल पुलिस महारानी हम को सत्य करके दिखला रही है। जिन अभागे निर्धन यात्रियों को ऊंट गाड़ी की सवारी नसीब हुई है उन के हृदय पर यह मसल भले प्रकार अंकित है। मुझ दुर्भागी को भी बहुधा इस विपदागार (ऊंटगाड़ी) से काम पड़ता है वहां पर संसारी दुःखों को भूल कर केवल वहीं के चरित्र देख २ भगवान् से लौ लगानी पड़ती है। दूसरे यात्रियों का कष्ट देख अपना दुःख भूल जाता है। यह सब आफतें पुलिस महारानी के कर की अनुग्रह से आती हैं।

एक तो प्रत्येक यात्री को मन मांग दाम देने पर भी १८ इंच चौड़ी जगह से अधिक बैठने को नहीं मिलती। चाहे यात्री मोटा हो वा दुर्बल और उतने ही स्थान में अपनी यात्रा की सामग्री लोटा डोर बिस्तर भोजन इत्यादि रखना होते हैं। सारांश यह है कि दो गज लम्बी, डेढ़गज चौड़ी एक ऊंटगाड़ी में ज़िलाधीश ने १४ यात्रियों को आवश्यकीय सामान सहित लेजाने की आज्ञा दे रक्खी है पर पुलिस की कृपा से मेले दशहरे के दिनों में उसी गाड़ी में तीस तीस सवारी तक भर दी जाती हैं, ग़रज़ बावली के लोभ से यात्री बेचारे मन मांगे दाम दे कर भी ऐसी आफतें भोग कर भी अपना मनोरथ सिद्ध करते हैं। पर कृपाकारिणी पुलीस गाड़ीवालों पर दया प्रकट करने के अभिप्राय से ज़िलाधीश की आज्ञा के विरुद्ध होते हुये देखकर झट आंख फेर जाती है और कान तक नहीं हिलाती, पर लोभी गाड़ीवानों को इतने पर भी सन्तोष नहीं होता तब चमारों का कच्चा चमड़ा गाय भैंस इत्यादि किसी पशु का क्यों न हो गाड़ी के टप (छत) के ऊपर बांध अपनी धन तृष्णा बुझाने की इच्छा करते हैं। उस चमड़े की दुर्गन्धि से गाड़ी में बैठेहुये यात्रियों का जब स्वास्थ्य बिगड़ता है और वमन (क़े) आरम्भ होता है मानो साक्षात् कालका (हैज़ा) फ़ैल गया। एक दूसरे के ऊपर अपने पेट से निकला हुआ अशुचि भोजन डालता है। यात्रियों के वस्त्र और धर्म भ्रष्ट करता है पर यह किसी यात्री का साहस नहीं होता कि प्रजा रक्षक पुलिस के कानों तक इस विपत कहानी को सुनावे। कोई तो बेचारे सोचते हैं कि चौकीदार

अथवा कानिष्टविल स्वयं ही देख रहा है यही पुलिस है फिर हम कहने कहां और किस से जावें ?। यदि किसी मन चढ़े से न रहा गया और उस ने सब समाचार पुलिस स्टेशन (थाने) में थानेदार साहिब को जा सुनाया तो वहां से साफ़ उत्तर मिलता है कि यह तो ऊंट गाड़ी है यदि आराम ही चाहते थे तो इस में बैठे ही क्यों थे । यदि किसी ने अधिक हा हा विन्ती की तो जवाब मिलता है कि चल २ जा अर्ज़ी जाकर दे हम क्या करें । और अन बोलते पशुओं के कष्ट को वोही बेचारे जानें और मैं भी आगामी अंक में संक्षेप से लिखूंगा ।

हमारे पाठक गण जिन को इन ऊंट गाड़ियों से काम नहीं पड़ा वे ख्याल करेंगें कि इक्के में तीन से अधिक सवारी होने पर चालान कर दिया जाता है, फिर पुलिस ऊंट गाड़ी की ऐसी दुर्गति देखकर भी ऐसा रूखा उत्तर क्यों कर दे देती होगी । पर जो उन में बैठ कर यात्रा करते हैं वे इस तोता चश्मी के कारण को भले प्रकार जानते हैं कि पुलिस की रिशवत तो प्रसिद्ध ही है फिर रिशवत देने वाले का लाभ विचारना ही पड़ता है पुलिस यहां भी अनेक कर लेकर आंख नीची कर लेती है अर्थात् पुलिस कर्मचारी अपने सम्बन्धी और इष्ट मित्रों सहित दूनी जगह दाब कर बैठ जाते हैं । दीन यात्री बेचारे स्वयं ही पुलिस कर्मचारियों को देखकर डर के मारे सुकड़ जाते हैं । और उनको सोने के लिये भी आसायश की जगह मिल जाती है तिस पर खूबी यह कि महसूल की कौड़ी नहीं खर्च करने पड़ती । यदि कभी छोटे वा बड़े थानेदार साहब का ही आगमन हो जावे तो ऊपर का पूरा दर्जा ही खाली कर दिया जाता है फिर उसकी सवारी चाहे तो मास मिट्टी की भांति उसी में ठूंसर कर भरी जावें चाहे पैदल जावें गाड़ी के मालिक का कितना ही नुक़सान हो कुछ परवाह नहीं । इसी दिन के लिये ज़िलाधीश की आज्ञा भंगकर यात्रियों को दुःखित देखकर भी आंख झपका लेने पड़ती है । पुलिस वालों को महसूल देना पड़े तो गाड़ीवालों का भी कदापि अनाप सनाप यात्री लादकर इतना लाभ न उठा पावें और न यात्रियों को कष्ट होने पावे ।

पर भाई यह विपत् कहानी किसे सुनाई जावे कौन सुनता है तिस पर भी आज सच्ची बात कहने का जमाना नहीं है। हाय ! इस अभागे भारत के ऐसे भाग्य फूटे हैं कि जिस में रिशवत खोर झूंठे और फ़रेबी जालसाज़ अन्याई तो ऐश करें बग्घियों पर चढ़े२ फिरें और धर्मात्मा दुःख पावें? । समय का हेर

फेर देख समस्त प्रजा अपने दग्ध हृदय को दबाये मन मारे बैठी है। कोई मुख से ह-वास नहीं निकालता वही मसल होरही है कि निर्दई मारे और रोने न दे॥ पर ऐसे समय में भी विर्ले समाचार पत्र अपनी विचार शील न्याई गवर्नमेन्ट से प्रार्थना करने में नहीं रुकते, भला पुत्र को माता के सनमुख अपना दुख रोने में क्या लज्जा और भय करना चाहिये ?। पर नहीं नहीं इसके प्रतिकूल होता है अर्थात् ऐसे समाचार पत्रों के सम्पादक ऐंचे खैंचे जाते हैं सबूत करने का पुछिल्ला लगाया जाता है भला मुझसे ही कोई पूछे कि यह जो ऊंटगाड़ियों के यात्रियों की विपत कहानी को आंखों से दिखला तो क्या मैं एक ही दिन में अथवा बिना अवसर पाये अथवा बिला खुफ़िया तहक़ीकात के दिखला सकूंगा कदापि नहीं ।

हां इतना अवश्य हो सकता है कि यदि हमारे दयालु ज़िलाधीश इधर कुछ ध्यान देवें और यात्रियों को मुफ़्त रिपोर्ट लिखा देने का पक्कार प्रबंध करदें तो यह अत्याचारी गाड़ीवान् अत्याचार करने से रुकें और बेचारे यात्री भी दुःख से छूट जावें ।

द० अवधबिहारी लाल सम्पादक वैश्य हितैषी वेवर॥

इटावा में हिंसा का प्रचार ।

जमुना के तट पर विद्यमान इटावा नगर में अब नया ज़िवह ख़ाना इटावे से इकदिल जाने वाली दो सड़कों के बीच में बना है जहां होकर हज़ारों हिन्दू यात्री भी नित्य प्रति निकलते हैं और उसी ज़िवह खाने के निकट ही एक प्राचीन पक्का कुआ भी बना है जहां ग्रीष्म ऋतु में यात्री विश्राम लेते और जलतृषा को बुझाते हैं । पर अब कदाचित् ज़िवह खाने में गोवध करने वाले कसाई भी गौओं के रुधिर भरे हुये बर्तनों से उसी कुये से जल लेंगे जिस से यात्रियों के हाथ से उस कुये के निकल जाने की घनिष्ठ शंका है और उस स्थान पर जलाशय के विना यात्रियों को महान् कष्ट होना भी सम्भव है । पर क्या हो हमारी भारत सरकार भारतवासी हिन्दुओं की दीन पुकार और धर्म की किंचित् भी परवाह नहीं करती हिन्दुओं के दिल दुखाना कोई बात ही नहीं समझती, सत्य है "टेढ़ जान शंका सब काहू, बक्र चन्द्रमहिं ग्रसहिं न राहू" यदि भारत सरकार गोवध के ऊपर ध्यान देवे

तो वन्द हो जाना कितनी बड़ी वात है ?। पर नहीं गोवध वन्द करने से हिन्दू मात्र प्रसन्न हो जायंगे इस लिये इधर ध्यान देना उचित नहीं जानती, नहीं तो अभी ताज़ा समाचार है अख़बारों के पाठकगण इतनी जल्दी न भूल गये होंगे कि हमारे देशप्रिय हिज़ हाईनेस अमीर काबुल ने ईद के रोज़ गोवध की ख़बर पाकर दिल्ली के मुसलमानों को सूचित किया था कि यदि गौकी कुरवानी की जायेगी तो मैं दिल्लीमें कदापि न आऊंगा तदनुसार मुसलमानों के ईद ऐसे त्योहारों पर भी गोवध नहीं किया गया, जिस के परिवर्तन में अमीर महोदय ने मुसलमानों को धन्यवाद दिया और कहा कि हम तुम्हारे वादशाह नहीं हैं। पर तुम लोगों ने हमारा हुक्म माना इस लिये हम आप लोगों से बहुत ही खुश हैं। और आयंदा को हिदायत करते हैं कि जैसा मैं मुसलमान हूं वैसे तुम लोग भीहो, पर मैं गोमांस नहीं खाता और न गोमांस खाना और उन को वेअर्थ काटना अहिलेइस्लाम को ज़रूर और मजहबी समझता हूं फिर हिन्दुओं के दिल दुखाने का अज़ाव नाहक क्यों लिया जावे। इस लिये तुम सब अहलेस्लाम मेरे भाई हो मैं तुम को यहां का वादशाह न होने के सबव से हुक्म नहीं दे सकता लेकिन खुदा की तरफ़ से भेजा हुआ काबुल का वादशाह हूं इस लिये तुम लोग खुदा का साया समझ कर मेरा हुक्म मानो और अपने हिन्दू भाइयों के दिल दुखाने के लिये गौ की कुरवानी हरगिज़ मत करो।

अब पाठक लोग समझ गये होंगे कि यदि अमीर महोदय की आज्ञा मानने वाले सब न होंगे तो इस में भी संदेह नहीं कि हज़ारों मुसलमानों ने गोवध और गोमांस त्याग दिया होगा, जिस से अहले इस्लाम के धर्म में भी वट्टा न लगा होगा यदि गोवध रोकने से धर्म में वट्टा लगता तो अमीर महोदय जो अपने धर्म में कट्टर और पक्के थे कदापि गोवध बन्द करने की आज्ञा न देते। वरन प्राचीन वादशाहों की भांति हिन्दू काफ़िरों को भी क़त्ल करने की सम्मति अवश्य दे जाते इन लक्षणों से प्रतीत होता है कि यदि अमीर महोदय का राज्य भारत में होता तो गोवध कदापि न होता।

बस हमारे पाठकगण भले प्रकार समझ गये होंगे कि यदि भारत सरकार भी अमीर महोदय की भांति गोवध को वन्द करना चाहे तो कर सकती है। पर क्यों करे हिन्दुओं के हृदय कैसे जलें? अभी रंगून में गोवध के पीछे वकराईद को हिन्दू मुसलमानों का खून भी गौओं के खून के साथ वहा था। इसी प्रकार वहुधा खून ख़राबी होती है, सो क्यों कर हो ?। अदालतों के द्वारा

रुपया कहां से आवे और वेचारे हिन्दू जो भारत सरकार के पैर की खाक बन रहे हैं वे अपना हृदय जला कर भी भारत सरकार का क्या कर सकते हैं। इत्यादि कारण वा हिकमत अमली से भारत सरकार गोवध वन्द नहीं कर सकती। क्योंकि भारत सरकार हिन्दुस्तान पर राजाओं की भांति राज्य नहीं करती वरन व्यौपारियों की भांति हर तरह कमाना जानती है। राजा लोग प्रजा को किसी प्रकार दुःखी नहीं रखना चाहते जैसा कि अमीर महोदय ने स्पष्ट कहा था और राजनीति में भी लिखा है कि—

"विविधि जन्तु संकुल महिं भ्राजा। प्रजावाढ़ जिमि पाय सुराजा॥
अर्क जवास पात विन भयऊ। जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ।
जासु राजप्रिय प्रजा दुखारी। ते नृप अवश नरक अधिकारी।"

फिर भला यह कब हो सकता था कि हमारी भारत सरकार इतनी चतुर हो कर भी प्रजा को दुखी रख अपने लिये नर्क का सामान करती। कदापि नहीं। क्या भारत सरकार ऐसे विचारशील राजा को पा कर प्रजा दुःखित हो जापानादि देशों को भाग जाने का विचार करती? नहीं नहीं कदापि नहीं। इन लक्षणों से प्रतीत होता है कि भारत सरकार एक व्यौपारी है जिस के चंगुल में फंस कर भारत प्रजा अपने अपने कर्म्मों और निर्बुद्धिता तथा फूट पापिन के बदौलत घोर अत्याचार और महान् कष्ट सह रही है। अपना सर्वस्व धन धर्म तिलाञ्जली दे रही है। हम अभागी भारत प्रजा से पूंछते हैं कि सन् १८५७ में तो ऐसी धर्मधुरन्धर वन गयी थी कि केवल दांत से चर्वी के कारतूस काटने का हुक्म पाते ही म्यान से निकल पड़ी थी और अब गौओं का रुधिर पी कर भी टस्स से मस्स नहीं करती ऐसी वेपानी क्यों और कब से हो गयी हो?। खैर यदि कुछ नहो सके तो इटावा निवासियों को युक्ति और उपाय करके इस ज़िवहखाने को तो अवश्य ही हटवा देना चाहिये और जिलाधीश को भी प्रजा के निवेदन पर ध्यान देना अति आवश्यकीय है।

अवध विहारीलाल सम्पादक वैश्यहितैषी बेवर,

सम्पादकीय विचार—प्रथम तो बुरे कामों से सभी राजा प्रजा को बचना चाहिये। बुरे काम सभी के लिये बुरे हैं। गो हत्या पशु हत्या भी बुरे काम हैं यह बात युक्ति प्रमाण दोनों से सिद्ध हो जायगी जिसको अनेक अच्छेर अं-

गरेज़ और मुसलमान भी जान चुके हैं लेख,भी हो चुके हैं हम इसको अच्छी दलीलों से भी सिद्ध कर सक्ते हैं कि गो हत्यादि सभी मनुष्यों के लिये बुरे काम हैं। अच्छे खानदानी मुसलमानों में कसाई लोग निकृष्ट बुरे इसी लिये समझे जाते हैं कि उनका यह हत्या करना बुरा पाप कर्म है जब ऐसे बुरे काम को छिपके एकान्त में भी करना बुरा है तो क्या खुले मैदान डंका की चोट देकर सब को दूर से दीखनेवाला कसाव खाने के लिये अच्छा मकान बनवाना चाहिये ? कदापि नहीं। इटावा नगर में शहर से पूर्व की तरफ जो नया कसावखाना सम्प्रति बन रहा है यह बहुत ही बुरा हानि कारक प्रजा के लिये महा दुःखदायी है। एक तो फाफामऊ की ओर से हजारों हिन्दु मनुष्य प्रतिदिन उसी मार्ग से शहर में आते,जाते हैं। कसाव खाने के दर्वाजे हो के आने जानेवाले उन सभी हिन्दुओं के नित्य२ गो हत्या देख२ हृदय जला भुंजा करेंगे हाहाकार होगा।

दूसरे बनीनीवाले कुए पर प्रतिवर्ष प्याऊ बैठती है जिसके द्वारा हजारों प्यासों को पानी मिलता था। उसके रुक जाने से हिन्दु धर्म का महान् घात होगा। और इस अपराध के भागी कसाव खाना बनवाने,वाले होंगे।

तीसरे–मुकद्दमादि के लिये ग्रामों से इटावा आनेवाले लोग अधिकांश उसी कुए पर जाके स्नान सन्ध्यादि करते थे उन सबको हृदय विदारक कसावखाना बनता देख २ के अभी से महा दुःख दीखता है उन सबके धर्म कर्म शौच स्नानादि धर्म कर्म का घात हुआ।

चौथा—एकदिल से स्टेशन को जाने वाली सड़क पर निकलने वा डोलने वाले सभी हिन्दुओं को इस कसावखाने का बनना महान् दुःखदायी होगा। हमारी राय में पहिले अब तक शहर के एक ऐसे नुक्कड़ पर यह कसावखाना था जहां सब किसी को यह भी ज्ञात नहीं था कि यहां क्या है ?! अर्थात् हमारी राय में उसके लिये पहिली जगह हिन्दुओं को इतनी दुःखदायी नहीं थी। यदि शहर के किन्हीं रईसों ने ऐसी जगह में कसावखाना बनाने की राय दी है तब उचित है कि इसको सब लोग मिलकर फिर शोचें और उस जगह से इस हत्याघर को बन्द करें और बनवाये विना काम न चले तो ऐसी जगह में बनवायाजाय जहां से कोई भी रास्ता वा सड़क पास न हो। जो सबकी आंखों में न खटके। हम आशा करते हैं कि जिले के हाकिम लोग इस हमारे लेख पर अवश्य विचार करेंगे। यदि कसावखाना वहां से न हटाया गया तो

मान लेना पड़ेगा कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट जान बूझकर वास्तव में ही हिन्दु प्रजा को महा दुःख देना भी अपना कर्त्तव्य समझती है। तब उस दशा में हम कह सकते हैं कि उस के लिये ऐसे सहस्त्रों कामों का भविष्यत् में बुरा परिणाम इस कारण होगा कि अन्यों को दुःख पहुंचाने वाले सभी मनुष्यों को परिणाम में अत्यन्त घोर भयंकर दुःख झेलने पड़ता है।

ब्रिटिश गवर्नमेण्ट में सुना जाना गया है कि बड़े २ उच्च कक्षा के बुद्धिमान् अंगरेज लोग विद्यमान हैं और यह बात किसी अंश में कुछ २ हम को भी सत्य सी मालूम हुआ करती थी कि इतनी दूर तक आकर अन्य देशों में कैसी सहूलियत से राज्य का प्रबन्ध चला रहे हैं। सो इस बात को हम अब ठीक नहीं मानते। क्योंकि ज्ञानी योगी तपस्वी विरक्त महात्माओं को छोड़कर अन्य सब मनुष्य मात्र का अभीष्ट अब यही है कि राज्यादि ऐश्वर्य हमारे अधिकार (कब्जे) में हो और वह हमारी सन्तति में अनन्तकाल तक अटल बना रहे किन्तु ऐसा न हो कि राज्याधिकार हमारे अधिकार से कभी निकल जावे। तो इसी नियम के अनुसार अंग्रेजों का भी यह अभीष्ट अवश्य होगा कि भारत वर्ष पर हमारा शासन अटल बना रहे। ऐसी दशा में अंगरेजों का मुख्य कर्त्तव्य अथवा बुद्धिमत्ता यह थी कि वे लोग भारतवर्ष की हिन्दु प्रजा को विशेष कर इसलिये सुखी रखते तथा प्रजा को दुःख देनेकी चेष्टा कभी स्वप्न में भी न करते कि यह देश भारतवर्ष आर्यावर्त्त, तथा हिन्दुस्थान है किन्तु तुर्किस्तानादि इस देश के नाम नहीं हैं। इस देश की खास प्रजा हिन्दु है। इस से अन्यों की अपेक्षा हिन्दुओं का स्वत्व इस देश में अब भी बहुत अधिक है। पर हम देखते हैं कि हमारे इस ऊपरी लेख से सर्वथा ही विरुद्ध अंगरेजों की चेष्टा होती है। सो इतनी ही नहीं किन्तु वह चेष्टा दिन २ बढ़ती भी जाती है! तब ऐसी दशा में अंग्रेजों को जो कोई अधिक बुद्धिमान् कहता मानता है उस की भूल है और अंग्रेज लोग अपने को यदि बुद्धिमान् मानते हैं तो वे भी भूल में अवश्य हैं। गवर्नमेण्ट की अनेक कार्यवाहियों से सब किसी को मानने पड़ता है कि उन की नियत अच्छी नहीं है। और जिस की नियत ही बिगड़ी है उस के लिये यदि अच्छा परिणाम होना किसी प्रकार सम्भव ठहरे तो आकाश में फूल लगना, वन्ध्या का पुत्र होना, पीड़ने से बालू में तेल निकलना आदि बातें भी असम्भव क्यों कर होंगी?। इस प्रसंग में हमारा कहना केवल इतना ही है कि

नीति शास्त्र ।

सब पाठक महाशयों को विदित हो कि केवल धर्म ही मनुष्य को परमार्थ की ओर विशेष झुकाने वाला होने पर भी संसार के अनेक काम धर्म के द्वारा अवश्य ही सिद्ध होते हैं। इस प्रकार संसार परमार्थ दोनो दशा में इष्टसाधक होने से धर्म ही सर्वोपरि मुख्य है। इसी कारण इस ब्रा० स० मासिक पत्र में मुख्य कर धर्म का ही विचार पूर्वकाल से बराबर किया गया। और आगे भी धर्म के व्याख्यानों की हो अधिकता इस में रहेगी। तौ भी समयानुसार नीति की शिक्षा के द्वारा भी हम संसारी मनुष्यों के बहुत काम सिद्ध होते हैं। चाहें यों कहो कि संसार में पूर्वकाल से ही सब प्रकार के मनुष्य होते आये हैं अर्थात् सभी मनुष्य धर्म मात्र का विचार करने वाले कभी नहीं होते। अथवा यों कहो कि सभी प्रकार के विचारों वाले मनुष्य सब समयों में होने भी चाहिये। इसी लिये वर्त्तमान समय में हमारे कई मित्रों की अनुमति यह हुई कि ब्रा० स० में भी कुछ नीति शास्त्र का उपदेश होना चाहिये। जो सामान्य कर सभी के लिये उपयोगी होगा। परन्तु नीति की शिक्षा उन के प्रेमी मनुष्यों को विशेष लाभ कारी होगी। नीति भी अनेक प्रकार की है उन में से प्रथम हम आपत्काल के लिये कही नीति को यहां मूलसहित थोड़ी २ कई अंकों में लिखेंगे। पीछे समयानुसार जैसा विचार हो गया किया जायगा। यह भी ध्यान रहे कि सनातन धर्म के वेदादि सभी शास्त्रों में ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिस का धर्म से कुछ भी सम्बन्ध हो। तदनुसार इस आगे लिखी जाने वाली नीति से भी धर्म पृथक् नहीं रहेगा जिस को हम बीच २ दिखाते चलेंगे। महाभारत आपद्धर्म अ० १४१। ४१। युधिष्ठिर बोले—

हीनेपरमकेधर्मे सर्वलोकाभिलङ्घिते।
अधर्मेधर्मतांनीते धर्मेचाधर्मतांगते ॥ १ ॥
मर्यादासुविनष्टासु क्षुभितेधर्मनिश्चये।
राजभिःपीडितेलोके परैर्वापिविशाम्पते ॥ २ ॥
सर्वाश्रमेषुमूढेषु कर्मसूपहतेषुच।

कामाल्लोभाच्चमोहाच्च भयंपश्यत्सुभारत: ॥ ३ ॥
अविश्वस्तेषुसर्वेषु नित्यंभूतेषुपार्थिव ।
निकृत्याहन्यमानेषु वञ्चयत्सुपरस्परम् ॥ ४ ॥
संप्रदीप्तेषुदेशेषु ब्राह्मणेचातिपीडिते ।
अवर्षतिचपर्जन्ये मिथोभेदेसमुत्थिते ॥ ५ ॥
सर्वस्मिन्दस्युसाद्भूते पृथिव्यामुपजीवने ।
केनस्विद्ब्राह्मणोजीवेज्जघन्येकालआगते ॥ ६ ॥
अतितिक्षुःपुत्रपौत्राननुक्रोशान्नराधिप ! ।
कथमापत्सुवर्त्तेत तन्मेब्रूहिपितामह ॥ ७ ॥
युगक्षयात्परिक्षीणे धर्मेलोकेचभारत ।
दस्युभि:पीडयमानेच कथंस्थेयंपितामह ! ॥ ८ ॥

भावार्थ–जब सनातन परम धर्म का घात होगया हो, सब लोगों ने धर्म का उलङ्घन कर दिया हो, धर्म के ऊपर पग धर २ चलने लगे हों, जब अधर्म (गोवधादि) कर्त्तव्य धर्म मान लिया हो तथा धर्म (गौ ब्राह्मणादि की रक्षा) को अकर्त्तव्य अधर्म ठहरा दियागया हो, जब मर्यादा नष्ट हो गयी हों, जब धर्मके निश्चय में हल, चल पैदाहो गयीहो, जब राजाओं ने वा शत्रुओं ने धनादि सर्वस्व बटोर लेनेके लोभादि से प्रजाके लोगोंको सर्वस्व हरणद्वारा पीड़ित दुःखित (तंग) कर डालाहो जब वैदिकधर्म विरुद्ध राज्यादि के होनेसे सब ब्रह्मचर्यादि आश्रमी मूर्ख हो गये हों तथा सब आश्रमों के कर्म नष्ट हो गये हों, जब कामासक्ति, लोभ अविद्या बढ़ जाने से सर्वत्र भय प्रतीत होता हो, अर्थात् कामी लोग साहसी निर्लज्जों सती कुलवती स्त्रियों को धर्म से डिगाने का भय, लोभी धूर्त्त चोर ज्वारी आदि से (सज्जनों का धनैश्वर्यादि चोरी आदि द्वारा हर लेंगे पुलिस को रिश्वत देकर चैन करेंगे राजा कुछ ध्यान नहीं देगा) धनैश्वर्य लुट छिन जाने का भय, अविद्या के बढ़ जाने से अन्यायी राजादि जो कुछ अनर्थ करे उसी का भय, इत्यादि प्रकार के भय जब दीख पड़ते हों ॥ ३ ॥ जब नित्य ही कोई किसी का विश्वास न करे, सभी को सब से शंका होगयी हो जो कोई किसी को अच्छा समझकर विश्वास करे उसी के साथ वह विश्वासघात करे जब कृतघ्नता बढ़ गयी हो जब छल फरेब से मनुष्य मारे जाते हों वा छल के द्वारा विशेषकर धर्म कर्मादि की हानि की जाती हो, जब आपस में मिल मि-

लाकर एक दूसरे को ठगते हों, ॥ ४ ॥ जब प्रान्तीय राजा रईस किसी प्रबल शत्रु से दबाये हुये हाहाकार की शोकाग्नि से जलते भुनते हुए समय काटते हों, जब ब्राह्मण वर्ण अति पीड़ित, दीन दुःखित होगया हो, जब ठीक समय पर वर्षा न होती वा प्रायः सूखा पड़ती हो, जब आपस में अनेक प्रकार का फूट वैर विरोध बढ़ गया हो, अर्थात् पति पत्नी, पिता पुत्र, भाई भाई में भी वैर विरोध होने लगा हो, ॥ ५ ॥ जल पृथिवी पर विद्यमान भोजन वस्त्रादि निर्वाह के पदार्थों के लिये सभी डाकू लुटेरों के तुल्य माल मारने को तयार हो गये हों, ऐसा निकृष्ट घोर समय आजाने पर दयासे पुत्र पौत्रादि की रक्षा करनी चाहते हुए ब्राह्मणादि लोग कैसे जीविकादि निर्वाह करें ? ॥ ६ ॥ राजा युधिष्ठिर जी कहते हैं कि हे भीष्म पितामहजी ! ऐसे उक्त प्रकार के आपत्कालों में मनुष्य क्या करे ? ॥ ७ ॥ उत्तम युग के क्षीण होने से लोक और धर्म के क्षीण होने पर और डांकू आदि नामक धनादि हरनेवाले म्लेच्छ राक्षसादि से पीड़ित दुःखित होने पर क्या करना चाहिये ॥ ८ ॥ अब पाठक महाशयों को राजा युधिष्ठिर जी के प्रश्नोंका अभिप्राय देखने से शोचने से अच्छे प्रकार ज्ञात हो जायगा कि जिन समयों के लिये प्रश्न किये गये हैं क्या वर्त्तमान समय में पूर्वोक्त प्रश्न की हालतें अधिकांश मौजूद नहीं हैं ? । अब हम यहां उक्त प्रश्न के उत्तर में जो कर्त्तव्य स्थिर किया गया है उसको क्रमशः लिखेंगे पाठक महाशय ! अगले अङ्कों तक आनेवाले उत्तर रूप लेख को देखते समय इन प्रश्नों का ध्यान अवश्य रक्खें तभी उत्तर वाक्य विशेष कर लाभ दायक प्रतीत होंगे ।

अत्रैवर्त्तयिष्यामि नीतिमापत्सुभारत ।
उत्सृज्यापिघृणांकाले यथावर्त्तेतभूमिपः ॥ ९ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् ।
भरद्वाजस्यसंवादं राज्ञःशत्रुञ्जयस्यच ॥ १० ॥
राजाशत्रुञ्जयोनाम सौवीरेषुमहारथः ।
भारद्वाजमुपागम्य पप्रच्छार्थविनिश्चयम् ॥ ११ ॥
अलब्धस्यकथंलिप्सा लब्धंकेनविवर्धते ।
वर्द्धितंपाल्यतेकेन पालितंप्रणयेत्कथम् ॥ १२ ॥
तस्मैविनिश्चितार्थाय परिपृष्टोऽर्थनिश्चयम् ।
उवाचब्राह्मणेवाक्य–मिदंहेतुमदुत्तमम् ॥ १३ ॥

नित्यमुद्यतदण्डःस्या-न्नित्यंविवृतपौरुषः ।
अच्छिद्रश्छिद्रदर्शीच परेषांविवरानुगः ॥ १४ ॥
नित्यमुद्यतदण्डस्य भृशमुद्विजतेनरः ।
तस्मात्सर्वाणिभूतानि दण्डेनैवप्रसाधयेत् ॥ १५ ॥
एवंदण्डंप्रशंसन्ति पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ।
तस्माच्चतुष्टयेतस्मि-न्प्रधानोदण्डउच्यते ॥ १६ ॥
छिन्नमूलेत्वधिष्ठाने सर्वेषांजीवनंहतम् ।
कथंहिशाखास्तिष्ठेयु-श्छिन्नमूलेवनस्पतौ ॥ १७ ॥
मूलमेवादितश्छिन्द्या-त्परपक्षस्यपण्डितः ।
ततःसहायान्पक्षंच मूलमेवानुसाधयेत् ॥ १८ ॥
सुमन्त्रितंसुविक्रान्तं सुयुद्धंसुपलायितम् ।
आपदास्पदकालेन कुर्वीतनविचारयेत् ॥ १९ ॥
वाङ्मात्रेणविनीतःस्याद् धृदयेनयथाक्षरः ।
श्लक्ष्णपूर्वाभिभाषीच कामक्रोधौचवर्जयेत् ॥ २० ॥

भा०-हे युधिष्ठिर ! आपत्काल में वर्त्तने योग्य नीति हम कहेंगे । आपत्काल में मनुष्य घृणा अर्थात् दुष्ट के साथ अनुचित करने के संकोच को छोड़ कर जैसा वर्त्ताव करे सो आगे कहेंग ॥ ९ ॥ इस विषय में राजा शत्रुञ्जय और महर्षि भरद्वाज का संवादरूप पुराना इतिहास उदाहरण में कहते हैं ॥ १० ॥ सौवीर देश में शत्रुञ्जय नामक प्रतापी राजा हुआ था। उस ने महर्षि भरद्वाज के पास जा कर यह बात पूंछी कि-॥ ११ ॥ अप्राप्त राज्यादि के लाभ की चाहना कैसे करे और ? प्राप्तराज्यादि को कैसे बढ़ावे ? बढ़ाये हुए को रक्षा कैसे करे ? । और रक्षित से क्या २ काम सिद्ध करे ? ॥ १२ ॥ उस निश्चयार्थ पूछने वाले राजा से भारद्वाज ब्राह्मण ने निम्न लिखित सकारण उत्तम उत्तर दिया ॥१३॥ मनुष्य शत्रु के साथ उद्यत दण्ड देने वाला रहे अपने पुरुषार्थ का वैभव विस्तार के साथ दिखाता रहे । अपने छिद्रों को सम्यक् प्रकार से गुप्त रक्खे और शत्रु के छिद्रों की सदा खोज करता रहै तथा जभी कोई छिद्र मिलजावे उसी के द्वारा शत्रुके मन्त्रादि में प्रवेश करे ॥१४॥ जिस का दण्ड नित्य ही उद्यत रहता है उस से शत्रु भी निरन्तर भय भीत रहता है इस से सब प्राणियों को दण्डद्वारा ही वशीभूत वा स्वाधीन करे ॥१५॥ इसी कारण साम, दाम, दण्ड, भद, इन राजनीति के चार अंगोंमें दण्डको ही मुख्य कहाजाता ह । (शेष आगे)

समालोचना।

"नन्दीश्वर चित्र" आधे डिमाई मोटे कागज पर श्री बाबू भगवान् व-ख्तसिंह जी, राज-कटारी, पोस्ट गौ राजामऊ, जि० सुलतान पुर ने यह चित्र ऐसा उत्तम बनाया है जिस के मुख, शृङ्ग, गोड़े, पुच्छादि सब अंगों के भीतर २ चालीश शिखरिणी छन्दों का पूरा महिम्न् नामक शिवस्तोत्र आ गया है। इस के चारो ओर अच्छ बेल बूंटा लगे हैं। इस को शिव भक्त लोग शीशे में लगवा के बैठक आदि में भी रक्खें तो अच्छा होगा। श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई से प्रकाशित हुआ है इस कारण मंगाने वालों को मुम्बई से ही मिल सकता है परन्तु मूल्य कुछ नहीं लिखा है हमारे अनुमान में)॥ होगा॥

"वैदिक जीवन" इस नाम का पुस्तक प्रथम भाग रूप ४७ पेज डिमाई साइज का ऋग्वेद भाष्य की उत्थानिका रूप है। इस के सम्पादक श्रीमान् राय शिवनाथ जी हैं। और दो पण्डित महाशय उन के सहायक हैं। इस से आगे इस वैदिक जीवन के चारभाग अर्थात् ४०। ४० पेज के चार अंग और भी छप कर आ गये हैं अभी तक सब पांच भाग छप के निकले हैं। दूसरे अंक से इस में ऋग्वेद भाष्य संस्कृत तथा नागरी भाषा में प्रारम्भ किया गया है। वैदिक जीवन के प्रथम भाग का संक्षेप से विषय (वेद ही मनुष्य की सारी धार्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करता है) है। इस प्रथमभाग में कई अंग्रेजों की सम्मति से तथा अंग्रेजी का पाठ साथ में देकर भी उक्त विषय के कई अंशों की पुष्टि की है। "परमात्मा के शुद्ध रूप (निराकार) में उस का पूजन उपासना और प्रार्थना नहीं हो सकती" वैदिक जीवन का यह लिखना सनातन धर्म का मूल और वेद का परम सिद्धान्त है। इस जीवन के द्वितीय भाग अर्थात प्रथम अंक में, १ स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) २-ऋषि, ३-स्वर, ४-गायत्र्यादि छन्द, ५-देवता, ६-ऋक् सूक्त, मन्त्र और मन्त्रार्थ, इन बातों पर विचार लिख कर क्रम से भाष्य का आरम्भ किया गया है। इन पांच भागों को हम ने देखा तो निश्चित हुआ कि वेदों पर अब तक जो कोई भाष्य हुए हैं उन सब की अपेक्षा इस भाष्य से वर्त्तमान समय में मनुष्यों को अच्छा उ-पदेश शिक्षा और विद्या सम्बन्धी आनन्द लाभ हो सकता है। इस भाष्यमें एक त्रुटि जान पड़ती है कि सूक्त मन्त्रों के विनियोग विषय में कुछ नहीं लिखा गया सो कदाचित् जप यज्ञ में इस का विनियोग समझ लिया हो। हम यह तो नहीं कह सकते कि इस से अधिक उत्तम विचार वेद पर नहीं हो सक-

ता क्योंकि वेद साक्षात् परमात्मा का स्वरूप शब्द ब्रह्म कहाता है । उस परमात्मा की महिमा अनन्त है । इस लिये वेद की उत्तम कक्षाओं की सीमा तक पहुंचना मनुष्य की शक्ति से बाहर है । ऋषि महर्षि लोग भी तपोबल से शुद्ध की हुई बुद्धि के द्वारा वेद के गूढ़ाशयों को शोचते विचारते थे वह तपोबल की शक्ति भी हम लोगों में नहीं है । इस कारण वेद का तत्त्वार्थ समझना हम लोगों को कठिन हो रहा है । परन्तु इतना हम इस भाष्य के विषय में अवश्य कहते हैं कि भाषानुवाद में आने वाले सभी से अच्छा उत्तम देखने योग्य लाभकारी इस समय यह भाष्य है । इस के प्रत्येक अङ्क का मूल्य ।) है वार्षिक १२ अंकों का मूल्य २॥।) है । मिलने का पता आगे विज्ञापन में देखो ॥

पं० ब्रह्मदत्तजी अजमेरसे लिखतेहैं कि आपका प्रेषित ऋग्वेदभाष्य प्राप्त हुआ उपलब्ध कर अत्यन्त आनन्द हुआ यह देश के सौभाग्य के दिन निकट आने के चिन्ह हैं कि वेदाध्ययन में लोगरुचि प्रकट करने लगे हैं और वेदों के कई भाषा भाष्य बन गए हैं परन्तु साथ ही इसके जब देखते हैं कि वर्तमान में मिलनेवाले भाष्यों में से ऐसे कितने थोड़े हैं–कि जो संस्कृतज्ञों को सर्वाङ्ग में तो क्या किन्तु अधिकांश में भी सन्तुष्ट कर सक्ते हैं अतीव खेद होता है–वर्तमान में प्रचलित वेदभाष्यों में इतनी खैंचा तानी और मनमाने अर्थ पाए जाते हैं कि कदापि सन्तुष्ट नहीं कर सक्ते परन्तु आपके भाष्य का नमूना देखने से आशा होती है कि आपके भाष्य की यह गति नहीं होगी–उदाहरण के लिये अग्नि मीडे० वायवायादि० इत्यादि मन्त्र ही लेलीजियो इन मन्त्रों के और भाष्य को पढ़ने से प्रतीत हो जायगा कि उन में से कोई भी निरुक्तानुकूल अर्थ नहीं करता है–यह आपही का भाष्य है जिसमें इतने मन्त्रों का अर्थ निरुक्त के अनुसार किया गया है किम्बहुना यदि आप इस उत्तम कार्य्य को जैसा आपने आरम्भ किया है पूर्ण करदें तो सर्व साधारणको आपका अतीव कृतज्ञ होना उचित है जैसा सुगम वेदाध्ययन आपके भाष्य के समीप रखने से हो जाता है वैसा मुझे विश्वास है किसी और से नहीं हो सकता–यदि इस समय के बने विद्यमान भाष्यों की जांच पड़ताल की जावे तो आप ही का सर्वोत्तम ठहरेगा–परन्तु आपके भाषा में छापनेवालों ने कुछ छापे की अशुद्धियां की हैं ऐसे उत्तम पुस्तक में अशुद्धियां रहजाना अतीव शोचनीय है अच्छा होता यदि आप इसको किसी (निर्णय सागरादि) उत्तम यन्त्रालय में छपवाते ॥

ऋग्वेदसंहिता (३)

(संस्कृत भाषाटीका सहित)

पद पाठ-शब्दार्थ-संस्कृत और हिन्दी अनुवाद-टिप्पणी और मन्त्रार्थ के आशय पर व्याख्यान सहित-कार्तिकमास से ४० पृष्ठ के मासिक पत्र रूप में मुद्रित होता है-स्वाध्याय की प्रतिज्ञा करने पर ब्राह्मणों को विना मूल्य के भेजा जायगा। अन्य ग्राहकों के लिये वार्षिक मूल्य (डाकव्यय सहित) २॥।) है, एक अंक का मूल्य ।) मिलने का पता—

पं० कृपाराम–मार्फत राय शिवनाथ

रेलवे इञ्जिनियर मुलतान

"ऋषिकुल विद्यालय-ब्रह्मचारी आश्रम" इस नाम की महती पाठशाला श्री हरिद्वार क्षेत्र में कई राजा महाराजों की सहायता से स्थापित हुई है। इस विद्यालय की ओर से छपी नियमावली हमारे पास आई है। हम ईश्वर को धन्यवाद देते और आशा करते हैं कि अधोगति में गिरते हुए भारतवर्ष के भविष्यत् में सुधरने के कई चिह्न अच्छे दीखते हैं जिन से अनुमान होता है कि आगे भविष्यत में शुभ समय आवेगा। जिस में गत बड़े लाट साहब को हम धन्यवाद देते हैं कि जिन की कृपा दृष्टि से हुए बंग विच्छेद के कारण "वन्दे मातरम्" की ध्वनि से गूंजता हुआ स्वदेशी आन्दोलन बंगाल से उठकर भारत के सब प्रान्तों में फैल गया, द्वितीय गत वर्ष से "सनातन धर्म महासभा" का प्रयाग राज में जन्म हुआ जिस से उन बड़े २ सभी कामों की पूर्ण आशा होती है कि जिन की भारत धर्म महामण्डल नामक सभा से होने की आशा हम लोगों को नहीं रही थी। तीसरा विदेशी चीनी से बचने वा त्यागने का बड़ा हल्ला तथा आन्दोलन होना। चौथा हरद्वार में "ऋषि कुल विद्यालय-ब्रह्मचारी आश्रम का खुलना। पांचवां कई नये समाचार पत्रों का निकलना। छठा हरियाना कुरु क्षेत्र देश में नये ब्रह्मचारी आश्रम के खुलने का प्रस्ताव होना। सातवां विश्वविद्यालय—यूनी वर्सिटी खोलने का बड़ा प्रस्ताव उपस्थित होना आठवां श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तथा पंजाबी के सम्पादकादि वीर पुरुषों को जेल का दर्शन होना नवम ऊपर लिखे ऋग्वेद भाष्य का आरम्भ होना, इत्यादि अन्य भी कितने ही शुभ चि-

हू भारत वर्ष के सुधार होने के पूर्व रूप सूचक समझने चाहिये। ब्रह्मचर्याश्रमादि में सहायता देनेवाले श्री महाराजा अलवर नरेशादि को धन्यवाद देना चाहिये। हमारे देश में वेद के विद्वानों का अभाव नहीं तो त्रुटि वा न्यूनता अवश्य है। अब इन ब्रह्मचारी आश्रमादि के द्वारा विशेष आशा होतीहै कि वेदों के तत्ववेत्ता अच्छे २ विद्वान् प्रकट होंगे। आर्यसमाज की ओर से तो गुरुकुल नाम की पाठशाला पहिले से ही चल रही है परन्तु उनकी पाठशालाओं में शास्त्र विधि का आदर नहीं, मन माने नियम तथा विचार चलाये जाते हैं। परन्तु ये ऋषि कुल विद्यालय सनातन धर्मियों की ओर से खले हैं उन में आशा है कि ऋषि प्रणाली रूप शास्त्र विधि का पूर्ण रूप से आदर होगा। तथा एक बात सब महाशयों को ध्यान में रखनी चाहिये कि सनातन धर्म के ग्रन्थों में ब्रह्मचर्याश्रम का निषेध कलियुग में लिखा है। इस का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करने की शक्ति वा योग्यता हम कलियुगी मनुष्यों में नहीं है इस के लिये हमारी सम्मति यह है कि–"अकरणान्मन्द करणं श्रेयः" इस जन श्रुति के अनुसार शास्त्रोक्त सब नियम न सध सकें तब जो २ नियम धर्म विद्यार्थी कर सकते हैं वे अवश्य कराये जावें। जैसे जूता छाता का त्याग, भोजन में सैन्धव लवण को छोड़के अन्य लवणों का त्याग, देव, ऋषि, पितरों का तर्पण, किसी समीपस्थ देव मन्दिर में देवता का नित्य दर्शन–स्तोत्रपाठ, नित्य नियम से सायं प्रातःकाल गृह्यसूत्रोक्त विधि से समिधादान, सन्ध्योपासन इत्यादि हो सकने योग्य ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों का एक छोटासा पुस्तक बन जाना चाहिये जिस के अनुसार सनातनधर्म के सब ब्रह्मचर्याश्रम पाठशालाओं के ब्रह्मचारी अपना २ धर्मानुष्ठान करें। नियमावलि की पांचवीं धारा में लिखा है कि "सब के एक से वस्त्र रक्खे जायंग" इस से शंका होती है कि क्या एक ही रंग के वस्त्र सब वर्णों के ब्रह्मचारियों के होंगे? तब तो मन माना आर्यसमाजियों कासा कृत्य हो जायगा। वर्णव्यवस्था की भी इतिश्री हो जायगी। इसलिये तीनों द्विज ब्रह्मचारियों के वर्ण (रंग) भिन्न २ शास्त्रोक्त रक्खे जाने चाहिये, यहीं से वर्णव्यवस्था चलती है। आशा है कि–"ऋषिकुलविद्यालय" के नेता इस पर पूर्ण ध्यान अवश्यमेव देंगे॥

"आलाहृदयान्धकारमार्त्तण्डप्रत्युत्तरवज्र"

इस नाम का पुस्तक–सीतामढ़ी जि० मुजफ्फर पुर निवासी पं० रामानुग्रह त्रिवेदी ने छपा कर प्रकाशित किया है। इसी उक्त पते से पुस्तक मिल सकता है। तीसरी आवृत्ति के छपे दयानन्दी सत्यार्थप्रकाश को स्वा० आलाराम सागर जी ने झूठा सिद्ध किया था। उस पर बड़ुआ आर्यसमाजी ने स्वा० आलाराम जी को गाली दे कर पुस्तक "आलाहृदयान्धकारमार्त्तण्ड" छापा था, उसी का उत्तर इस पुस्तक में छपाया गया है॥ मूल्य मालूम नहीं॥

"खालसा आनन्द विवेक" इस नाम का प्रथम भागरूप पुस्तक पं० छज्जूराम शर्म्मा मन्त्री सनातनधर्मसभा जगरांवा जि० लुधियाना ने छपा कर प्रकाशित किया है। विषय यह है कि नयी रोशनी में नवीन तत्तखालसा नामी नानक पन्थी लोगों ने यह कहना कुछ दिनों से आरम्भ कर दिया है कि गुरुमर्यादा के अनुसार विवाह समय में केवल आनन्द पढ़ाना ही ठीक है। वैदिक रीति से संस्कार करवाना उचित नहीं है। इस से विरुद्ध पं० छज्जूराम जी ने उन्हीं के युक्ति प्रमाणों से गुरु मर्यादानुसार भी वेदोक्त रीति से विवाह करने का विचार सिद्ध किया है। सोलह पेजा डेमी साइज ५० पेज का पुस्तक है तथा –) मूल्य है। मिलने का पता ऊपर लिखा है॥

"नवीनसिंहशिक्षा" इस नाम का पुस्तक श्री सुखलाल उपदेशक–रोपड़ जि० अम्बाला निवासी ने द्वितीय वार छपा कर प्रकाशित किया है। सोलह पेजा रायल ३३४ पेज का पुस्तक है। विषय यह है कि सिंह नामक सिक्ख लोग अनेक धर्मांशों में सनातनधर्म से विरुद्ध कहते मानते हैं। उन सब का उत्तर गुरुग्रन्थसाहबादि के ४०० प्रमाणों द्वारा दिया है जिस में सिंहों के अनेक पुस्तकों के उत्तर आ गये हैं। सो सत्य बात तो यह है कि सिंह नामक सैकड़ों मनुष्यों को सुखलाल उपदेशक ने इस पुस्तक द्वारा नास्तिक वा सनातनधर्म के विरोधी होने से बचादिया है इस से वे धन्यवाद प्रशंसा के योग्य हैं। मूल्य प्रतिपुस्तक ।–) है। पता ऊपर लिखा है॥

लिपिबोध।

(पदकप्राप्त–इण्डियन इण्डस्ट्रियल इक्ज़ीबीशन बनारस सन् १९०५ ईसवी)

नागरी लिखना सिखाने के लिये काशी और आरा की नागरीप्रचारिणी सभाओं तथा अनेक राजा रईसों से पुरस्कृत सम्पादक समुदाय द्वारा समालोचित और प्रशंसित, ५३१ आकृतियों से विवरणसहित, परिपूरित, प्रचलित लिपि, शंकरलिपि सुडौललिपि और सरललिपि से संगठित, नानाप्रकार के

अलंकृत और अलंकार विभूषित अक्षरों से सुशोभित, लिपिबोध नामक पुस्तक दूसरीवार अत्युत्तम छपकर तैयार है। अत्यन्त लाभदायक होने के कारण, युक्तप्रान्त, बङ्गाल, बिहार, मध्यप्रदेश, मध्यहिन्द और राजपूताना आदि भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में इस सर्व्वमान्य लिपिबोध का प्रचार दिनोंदिन अधिक होता है। आप भी मंगाकर देख लीजिये। मूल्य १।≡) डाक महसूल=) है।

हमारी राय में भी नागरी भाषा के अच्छा सुडौल लिखना सीखने के लिये यह पुस्तक विद्यार्थियों को अत्यन्त उपकारी है। (ह० भी० श०) मिलने का पता—

गौरीशंकरभट्ट मसवानपुर—कानपुर।

(समाचार)

श्रीयुत आलाराम सागर जी ने ता० ४ फरवरी से एक सप्ताह पर्यन्त हिन्दु शब्द का अर्थ उस की उत्पत्ति, मूर्त्तिपूजा, अवतार, श्राद्ध तथा विद्यादि विषयों पर आजमगढ़ में व्याख्यान दिये। फिर मऊ, गोरखपुर आदि में भी इसी प्रकार व्याख्यान दिये। आलाराम सागर का नाम सुनते ही आर्यसमाजी लोग सत्ता छोड़ देते, सुस्त हो जाते हैं। आलाराम जी से डरते भी हैं। इस के पश्चात् सागर जी प्रयाग राज को गये हैं॥

दानापुर विहार प्रान्त में स्वदेशी चीनी प्रचारिणी ब्राह्मण सभा— यहां एक बड़ी भारी सभा हुई उस में अनुमान ६० साठ पण्डितों ने प्रतिज्ञा की और एक विज्ञापन छाप कर सर्वसाधारण में बांट दिया गया, जिस का अभिप्राय यह था कि हम लोग अब तक नहीं जानते थे कि गौ, शुअर वगैरह जानवरों की हड्डी तथा खून आदि घृणित वस्तुओं से विदेशी चीनी साफ की जाती है। पर अब ऐनसाईक्लोपीडिया, बीटेनिका, वगैरह किताबों से विदित हुआ इस कारण उस के दर्शन से भी हम लोगों के धर्म को हानि हो सकती है तब भोजन का क्या कहना!। इस लिये हम लोग शपथ पूर्वक आज से विदेशी चीनी छोड़ते हैं और वैश्यादि यजमानों को विदित कराने के लिये विज्ञापन देते हैं कि जिन यजमानों को विवाह पूजा श्राद्ध आदि में ब्राह्मणों को भोजन कराना हो वे लोग विदेशी चीनी की सामग्री से भोजन तैयार न करें। यदि इस बात को न मानेंगे तो कोई भी ब्राह्मण उनके यहां भोजन न करेगा। और यदि ब्राह्मण लोग न मानेंगे तो वे जाति च्युत करके पंक्ति बाह्य किये जावेंगे। इस दानापुर की सभा का अनुकरण सब नगरों तथा कस्बों और ग्रामों के ब्राह्मणों को करना चाहिये। क्या ऐसी भ्रष्ट विदेशी चीनी को खाते हुए ब्राह्मण अपने को ब्राह्मण लोग कह सकते हैं?। अर्थात् कदापि नहीं। ब्राह्मण भाइयो! अब सुस्त पड़े रहने का समय नहीं है। अथ स-

चेत हो जाइये। दानापुरके तुल्य सभा कर२ के सब शहरों से विदेशी चीनी बन्द कराइये उस से अपने तथा अन्य यजमानादि को धर्म भ्रष्ट होने से बचाइये आज थोड़े ही परिश्रम से यह काम हो सकता है सहज में हो आप लोगों को यश कीर्ति प्राप्त हो सकती है। फिर क्यों सुस्त पड़े हो? सचेत हो जाइये।

इसी वर्ष लाहौर में एक ब्राह्मण सभा नाम से उपस्थित हुई है उस के आठ नियम भी बन कर छप गये। उस सभा का मुख्य उद्देश यह है कि ब्राह्मण जाति की दिन २ सब से अधिक २ अधोगति होती जाती है इस के लिये सर्व साधारण नाम वाले सारस्वत, गौड़, सनाढ्य, कान्यकुब्ज आदि सभी ब्राह्मणों की मिल कर एक सभा अपने स्वत्व की रक्षा और उन्नति के लिये एकवार किसी बड़े शहर में होनी चाहिये। उस का प्रतिवर्ष भिन्न २ नगरों में एक महाधिवेशन हुआ करे और उस की शाखा सभा भिन्न २ नगरों में पृथक् हों उन सब सभाओं से प्रतिनिधि लोग वार्षिक महा सभा में आया करें। उसी सभा के द्वारा धर्म सम्बन्धी सभी दिक्कतों की पूर्ण उत्तम व्यवस्था करने का प्रबन्ध हो। इस सभा के द्वारा बहुत बड़े २ काम देशभर के हित-कारी हो सकते हैं। इस का प्रस्ताव अवश्य उठाना चाहिये॥

इस के लिये हम अभी इतना ही कहना उचित समझते हैं कि यदि हमारे इस प्रस्ताव को उचित समझें तो सब समाचार पत्रों के सम्पादक म-हाशय इस विषय में अपनी २ सम्मति प्रकाशित करें कि सब ब्राह्मणमात्र की एक महती ब्राह्मण सभा होनी चाहिये वा नहीं। और यदि होनी चा-हिये तो किस २ रीति से उस के द्वारा देश का उद्धार हो सकता है। उस में ब्राह्मणत्व सामान्य के विचार से श्रीमान् महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री जी, श्रीमान् बालगंगाधर तिलक जी, पं० मदनमोहन मालवीय जी आदि भी नेता हो सकते हैं। अस्तु—

"लाहौर में पंजाबी पर मुकद्दमा" इस मुकद्दमा के फैसला में लाहौर के म-जिस्ट्रेट ने मालिक श्रीमान् यशोवन्त राय को दो वर्ष की कड़ी कैद और एक हजार रुपया जुर्माना नियत किया और श्री अथावले एडीटर को छः महीने की कड़ी कैद और दोसौ रुपया जुर्माने का हुक्म सुनाया। इन दोनों महाशयों ने तीन घण्टे तक जेलखाने की हवा खा पायी थी तब तक जमा-नत मंजूर हो कर छूटने का हुक्म हो गया, जेलखाने के फाटक पर छूटते समय नगरवासियों की अपार भीड़ थी "बन्देमातरम्" की ध्वनि से आकाश

गूंज उठा था, अपरिमित फूलों की वर्षा दोनों पर होती थी जिस से आमतौर पर प्रजा सूचित करती थी कि आप दोनों महाशय बड़े ही परोपकारी हो जो देश हित के लिये इतना बड़ा कष्ट उठाने को तयार हो। यह वही पञ्जाब देश है कि जिस में प्रकट हुआ एक पञ्जाबी बालक प्रह्लाद ईश्वर भक्ति में इतनी हठ करके दृढ रहा और प्राण चले जानेका कुछ भी भय न किया जिस का परिणाम यह हुआ कि विष्णुभगवान् को स्वयं अवतार धारण करके रक्षा करनी पड़ी थी। यह वही पञ्जाब है जिस में गुरुगोविन्द सिंह जी ने अपने पुत्रों को भित्तियों में चिनवा देना देश हित के लिये मंजूर किया था। तथा इसी पंजाब में हकीकतराय जैसे बालक ने धर्म पर अपने प्राण समर्पण करके अपनी कीर्ति भारत वर्ष के नगर २ में फैला दी है। इस कारण हकीकतराय का दूसरा नाम "यशोवन्तराय" रक्खा जाय तो सार्थक ठीक होगा। तब पञ्जाबी के मालिक का तो वास्तविक नाम यशोवन्तराय ही है। हम धन्यवाद देते हैं कि यशोवन्तराय जी ऐसी कड़ी सजा का हुक्म सुन कर कुछ भी न घबराये। अब आपने इतने ही काम से संसार में यश प्राप्त कर लिया। कभी ऐसा समय था जब भारतवासी मृत्यु को तृणमात्र भी न समझते हुए अपने असली उद्देश से एक बालभर भी इधर उधर नहीं हिलते थे, मृत्यु भले ही हो जाय। बड़े हर्ष के साथ धर्म के मार्ग में अपने २ प्राणों को समर्पण कर देते थे, तभी भारत वर्ष का स्वतन्त्र राज्य था, सब देशों में भारत वर्ष शिरोमणि गिना जाताथा। अब हम लोग मृत्यु से बहुत डरने लगे हैं तभी से देश की अधोगति हो गई है। अब फिर भी आशा होती है कि जेलखाने की कड़ी २ सजाओं को भी हर्ष पूर्वक स्वीकार करते हुए अपने उद्देश को पूरा करने के लिये कटिबद्ध ही रहते हैं तो सम्भव है कि देशोद्धार के तथा धर्म के लिये प्राण तक समर्पण करने वाले वीर पुरुष इस देश में प्रकट होंगे और इस देश के लिये फिर वैसा पूर्ववत् दृढता का समय आवेगा॥

असनी–जि० फतेपुर से हमारे एक संवाद दाता लिखते हैं कि यहां परआप के (विनय पत्रिका) के लेखानुसार हम लोगों ने ता० २५–२–९ को एक महतीय सभा श्रीयुत प० परमेश्वरनारायण मिश्र के बैठक में की, जिस में सम्पूर्ण ग्रामवासियों नेएकत्रित हो प्रतिज्ञा की, कि अब विदेशी शक्कर तथा विदेशी शक्कर की मिठाई कदापि ग्रहण न करेंगे। सभा की ओर से एक दूकान स्वदेशी की खोलवाई गई॥

सभा से आप को सहस्रशः धन्यवाद दिया गया।

आवश्यकता ।

दरबारी गोपाल परमेश्वरी अनाथालय डेरागाज़ीखान के वास्ते एक शास्त्री पास पण्डित की आवश्यकता है वेतन २०) रुपया मासिक, स्थान मुफ़्त, कार्य उंस को पाठशाला में पढ़ाना है। मगर वह उपदेश कर सकता हो, सनातनधर्मी पण्डित हो, उसको तरक्की दी जावेगी । दरखास्तें—सेक्रेटरी के नाम शीघ्र आनी चाहिये ॥

भोलानाथ भुटाणी सेक्रेटरी–दरबारी
गोपाल परमेश्वरी अनाथालय डेरागाजीखान्

हुआ गंगा जी में मिल जाता है। उस के मिल जाने पर भी गंगा जी के जल में लेशमात्र भी अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु जैसा निर्मल श्वेत गंगा जल यमुना के मिलने से ऊपर मिलता है वैसा ही ज्यों का त्यों यमुना के मिलने पर भी बना है। क्या यह प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाली गंगा जी की दैवी महिमा नहीं है?। आस्तिक मनुष्य इस प्रत्यक्ष महिमा का अनुभव करते हुए शास्त्रोक्त गंगा जी की परोक्ष महिमा पर भी पूर्ण विश्वास करते हैं। उन्हीं को गंगा जी के स्नान का शुभ फल भी निःसन्देह प्राप्त हो सकता है॥

गत वर्ष से प्रयागराज में माघ मेला के साथ सनातन धर्म महासभा का भी वार्षिक अधिवेशन होना प्रारम्भ हुआ है। इस वर्ष हम भी अपने कई मित्रों के अनुरोध से चारों पर्व के समय प्रयागराज में प्रारब्ध वश पहुंच गये थे। महा सभा में हम भी चारो दिन संमिलित हुए। यद्यपि गत वर्ष की अपेक्षा महासभा का मण्डप इस वार साधारण बनाया गया था तथापि मेला भर में सब का शिरोमणि था। अब आर्यसमाजी लोगों का खेमा माघ मेला में नहीं लगाया जाता। किन्तु अच्छे २ प्रतिष्ठित आर्यसमाजी भी महासभा के जल्से में हर्ष पूर्वक सम्मिलित होते हैं। एक आर्यसमाजी महाशय सभा के व्याख्यानों पर अपना हर्षोत्साह उठ २ के कई वार प्रकट करते थे। समाजी आदि किसी के भी मत का खण्डन महासभा में नहीं किया गया। एक दिन स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार और विदेशी चीनी आदि के त्याग के ही व्याख्यान हुए थे। इस महासभा के द्वारा भारत वर्ष के सुधार की विशेष आशा है जिस को हम फिर कभी लिखेंगे। अलम्।

"सिरसागंज ज़ि० मैनपुरी" में आ० समाज का उत्सव था वहां समाजियों ने पहिले ही नया उत्सव करके सनातनधर्म का खण्डन करना आरम्भ किया था यह वात वहां के रहने वाले सनातन धर्मी ब्राह्मण तथा वैश्य लोगों को अत्यन्त दुःख देने वाली प्रतीत हुई इस कारण वहां के लोगों ने शिकोहावाद से पण्डित कन्हैयालाल जी को बुलाकर आ० समाजियों के किये आक्षेपों का समाधान कराया और वहां के सब की सम्मति से पं० भीमसेन शर्मा को इटावा से दो मनुष्य स्वयं आकर बुलाले गये जिन के व्याख्यानों से समाजी मत का मिथ्या होना रूप पोल सर्वसाधारण हिन्दु मुसलमान आदि को प्रतीत हो गयी। आ० समाजियों का मद लच गया और सनातन धर्मियों को सन्तोष हो गया। इस का परिणाम यह हुआ कि वहां सिरसागंज में सनातन धर्म सभा स्थापित हो गयी जिस के मन्त्री लाला श्री गुलालचन्द जी हुए हैं। पं० बाबूराम जी वहीं के निवासी धर्मोपदेशक नियत हुए हैं। वन खण्डेश्वर महादेव जी के पवित्र स्थान पर पाक्षिक सभा हुआ करेगी। और समाजोत्सव के साथ ही आगे सभा का वार्षिकोत्सव हुआ करेगा॥

४-आत्माराम सागर जी के ५६ छप्पन व्याख्यान इस छापेखाने में छप रहे हैं चार व्याख्यान तो छप गये आगे छपते जाते हैं। अन्दाजन ५६ व्याख्यानों का मूल्य कमसे कम ४॥) रुपया रक्खा जायगा। क्योंकि चार व्याख्यानों का ।=) मूल्यहै। इन चार व्याख्यानों के नाम -जगदुत्पत्ति, वेदोत्पत्ति, निराकार ध्यान खण्डन, जीवेश्वर स्वरूप समालोचन व्याख्यान हैं इत्यादि सागर जी के सभी व्याख्यानों में आर्यसमाजियोंके मत का खण्डन परम प्रबलता के साथ अटूट युक्ति प्रमाणों से किया गया है जिस को देख सुनकर समाजी लोग लाजवाब हो जाते हैं। ये ५६ व्याख्यान ऐसे २०० ग्राहकों को ३) रुपये में दिये जावेंगे कि जो अगाऊ मूल्य ३) रु० भेज देंगे। और बाकी लोग जैसे २ छपते जावें मगाते जावें। अभी ४ व्याख्यान डाक व्यय सहित ॥) में भेजे जावेंगे जिनकी इच्छा हो मगावें। ३)रु० में ५६ व्याख्यान लेनेवाले कुछ तो ग्राहक हो गये हैं। और शेष भी जल्दी होजांयगे इस लिये ग्राहक लोग सुस्ती न करें।

ब्रा० स० भाग ५के १। २ अंक साथ ही मार्च मासके भीतर ही ग्राहकों के पास पहुंचेंगे चिन्ता न कीजिये आगे ठीक प्रतिमास ब्रा० स० अवश्यमेव निकाला जायगा।

(तीर्थ स्नान तथा सनातनधर्म महासभा-प्रयाग)

हमारे पाठकों को ज्ञात है कि प्रयागराज तीर्थ में प्रति वर्ष माघ मासमें मकर स्नान का मेला होता है। परन्तु इस गत माघ महीने में अमावस्या स्वाभाविक पर्व के दिन दूसरी विशेषता सोमवती होना, तीसरी विशेषता उसी दिन मकर की संक्रान्ति होना, और चौथी विशेषता उसी दिन सूर्य ग्रहण होना थी। इस प्रकार चार पर्वों के एक साथ होने से प्रयाग के माघ मेला में भीड़ बहुत बढ़ गयी थी। अनुमान से दश लाख मनुष्य अमावास्या के दिन प्रयाग में उपस्थित होंगे जिन में ईसाई मुसलमान जैन सम्प्रदायी तथा आर्यसमाजी आदि अनुमान दश हजार आदमी ऐसे भी मेला में गये होंगे जिन लोगों ने तीर्थ स्नान पुण्यबुद्धि से नहीं किया होगा शेष सब सनातनधर्मी लोगों ने त्रिवेणी में स्नान किया था। एक ही दिन में एक परिमित स्थान पर एकसाथ इतने मनुष्यों के स्नान करने पर भी और सब प्रकार के मलिन मनुष्यों के शरीर वस्त्रादि की इतनी अधिक मलिनता गंगाजी में पड़ने पर भी अथवा यों कहो कि गंगोत्तरी से लेकर और बंगाल की खाड़ी (जहां गंगा जी समुद्र में जाकर मिली हैं) तक माघ की अमावास्या को ग्रहण के समय सब घाटों पर सैकड़ों मेला जुड़े [illegible] ही काल में कई करोड़ मनुष्यों ने स्नान किया परन्तु गंगा जी के जल में पूर्व की अपेक्षा लेशमात्र भी अपवित्रता वा मलिनता कहीं [illegible] किसी को नहीं प्रतीत हो सकती थी। प्रयाग में यमुना जी का प्रया[illegible] जल प्रत्यक्ष ही पृथक् प्रतीत होता

सूचना ।

(१) किन्हीं महाशय के पास विलायत का छपा संस्कृत टीका सहित कातीय श्रौतसूत्र हो तो वे हम को अवश्य लिखें । इस पुस्तक के समझने वाले बहुत कम हैं । हम इस पुस्तक से संसार के उपकार का कोई बड़ा काम कर देना चाहते हैं ।पुस्तक वाले को पुस्तक का मूल्य भी दे सकते हैं वा चाहे तो वही पुस्तक वापस कर देवेंगे ।

(२) विलायत का बना हुआ एक रायल प्रेस जिनके यहां विकाऊ हो,वे भी हम को लिख के सूचित करें । सम्भव है कि प्रेस लेलिया जाय ॥

(३) अठारह धर्मशास्त्र भाषाटीका सहित छप के तयार हो गये अनेक ग्राहकों के पास भी पहुंच गये । आगे बराबर रवाना किये जा रहे हैं। इन स्मृतियों में रायल साइज के १०० सौ फारम अर्थात् ८०० पेज हैं । भाषा टीका सहित इतने बड़े पुस्तक का मूल्य ३) रु० ही रक्खा गया है । डाकव्यय ।=) है । हमने पुस्तकों की जिल्दें भी बंधाई हैं । क्योंकि जिल्दें बांधने वाले सब जगह सब को नहीं मिलते और कहीं मिलते भी हैं तो बंधाई जिल्द की अधिक लगती है पर हमारे यहां से जिल्द सहित १८ धर्मशास्त्र भाषाटीका सहित ३।) में दिये जाते हैं । और ब्रा० स० भाग ४ के ग्राहकों को १) एक रुपये में मिलते हैं । जिन्हों ने ब्रा० स० के चतुर्थभाग का मूल्य नहीं भेजा है उन्हें उचित है कि अतिशीघ्र वी०पी० द्वारा उपहार मंगावें मार्च तक उपहार देने का नियम है आगे न मिलेगा जो ग्राहक अब तक हो चुके उन को भेजे गये तथा भेजे जा रहे हैं । और जो कोई अब भी ब्रा० स० भाग ४ के ग्राहक हों तो एक महिने के भीतर उन को भी यह ३) का पुस्तक १) में मिल सकेगा । एकमास वाद उन को भी यह पुस्तक ३) में ही मिलेगा । यदि कोई ग्राहक जिल्द सहित मगावें तो १।) में मिलेंगे । परन्तु यह स्मरण रहे कि ब्रा० स० भाग ४ के १२ बारहों अङ्कों का वार्षिक २।) देने वालों को ही ये ३) के धर्मशास्त्र १) में मिलते हैं अन्य किसी को नहीं। इसलिये अब भी जिन किन्हीं महाशयों को १८ धर्मशास्त्र का उपहार १) में लेना अभीष्ट हो, वे लोग शीघ्र ही मंगालें फिर समय चूकने पर कदापि इस मूल्य में १८ धर्मशास्त्र न मिलेंगे। १८स्मृतियों का ।=) डाकव्यय लगता है २।) ब्रा० स० भाग ४ का १) उपहार का सब ३॥=) का वी०पी० भेजा जाता है ।

और जो लोग ब्रा० स० न लेना चाहें केवलस्मृतियां ही मगावें तो विना जिल्द के ३) जिल्द सहित के ३।) होंगे । ५पुस्तक लेनेवाले को ५के मूल्य में ६ पुस्तक भेजे जावेंगे । १० के मूल्य में १२पु० और२० पु० के मूल्य में २५ पुस्तक मिलेंगे इससे अधिक मगानेवाले पत्र द्वारा निश्चय करें ।

ब्रा० स० की मूल्य प्राप्ति स्वीकार ता० ४ अक्टूबर से १६ फर्वरीतक

१३४२ पं०शिवप्रसादपा०बड़ेपडरीकलां २।)
१४४१ लालनरेन्द्रसिंह खेरागढ़ २।)
१०४ श्रीआत्मानाथयो० गुरुदासपुर१।।।)
११६८ बा० रामप्रसाद जी दमोह २।)
१०५५ पं०दयाराम शर्मा आसाम २।)
९८७ बा० ब्रजलाल मु०देरास्माईलखां२।)
११०८ पं०केदारनाथ शर्मा कैरू २।)
१०३६ बा० रामनारायण शाहपुर १।।।≡)
८५५ बा० तपखीलाल मुंगेर २।)
८१२ पं०श्यामलाल जी जलाली २।)
१२११ पं० नटवरलाल मथुरा १।।)
१४४४ पं० नन्दीलाल चपराघाट २।)
७१८ हकीम रघुनाथ जी बेलौन २।)
१४४६ राजारामनारायण गव्यलोदीपुर २।)
१४४७ पं० माधवलाल अहमदाबाद २।)
१४४५ पं० ज्वालादत्त निर्मल फतेपुर २।)
१०९७ श्रीकृष्णमंत्री डिंगटान २।)
१२८७ चौबेरघुबरदयाल बसरेहर २।)
१४४८ फूलचन्द घीसीलाल इन्दौर २।
४७० पं० हरनारायण शर्मा इकनौर २)
११९१ पं० बद्रीप्रसाद धमड़ा २।)
१२९५ ला०विरहीचन्द पोद्दार वर्धा २।)
१४५२ पं० चन्द्रमणिजी नपाल २।)
९९२ मन्त्री स० ध० सभा जीन्द २।)
५४६ पं०गोविन्दरामअनन्तरामरायपुर२।)
१४५३ जयगोपाल वि०वटालाकोट१।।-)
११९१ बा० अम्बाशंकर जामनगर २।)
१४५४ शंकररावराधाकृष्ण बड़वानी २।)
१२४५ पं० शिवकुमार व० इलमऊ २।)
१०२९ पं० मुक्ताप्रसाद सुलतानपुर २।)
१४५५ पं० ईश्वरदास साकोली २।)

११९४ ला०गदाधरप्रसाद औरय्या २।)
३६७ किशनलालरामचन्द्रआढ़तिया सिकन्दराबाद २।)
१४५६ देवीदासओझा पिण्डदादनखां२।)
१०१३ सेठहीरजी मूलजी बम्बई २।)
१४५८ पं० लालबहादुर शोहनपुर २।)
१४५७ पं०देवीदत्त जोशी अल्मोड़ा २।)
४९२ नृसिंहदास झिंगण झंग २।)
१०१८ पं० स० ध० सभा विलासपुर २।)
१४६० पं० शालिग्राम पटना २।)
१४६१ पं० सत्यरूप मिश्र पटना २।)
१४६२ पं० मुंशीराम शर्मा सुरथल २।)
१४६३ पं०लक्ष्मीनारायणघोघड़ीपुर २।)
१२१४ पं० राधाकृष्ण मियांवाली २।)
१४७० लूनकरनदासजानकीदास दानापुर ३।)
१४७१ पं० परशुराम शिकारपुर २।)
४१० एच० हरसुखदेव कोहिमा १।।)
१२८० पं०रतीरामशास्त्रीअहमदपुर २।)
१४७: हुलासराय जी कसरक २।)
१४३२ डा० मथुरादास टौंगशान १)
३६३ रामचरणाचार्य भावलपुर १।।)
१४७७ मंत्री स०ध० सभा फगवाड़ा २।)
१४७९ बा० ब्रजराजसिंह बेहंदरखुर्द २।)
१४८० बा० रूपचन्द्रकपूर मुलतान २।)
८८९ ला० सन्तराम अमृतसर १।)
१४८५ विनायकजागेश्वर भंडारा ३।।=)
१४६५ पं० हरवंशलाल रोहतक २।)
१४८६ पं० सीताराम शर्मा पाडल्या २।)
१४७८ महन्तरामगिरिजी दलमऊ २।)
१४८७ बा० जोखनप्रसाद नेमाड़ २।)